173

प्राक्कथन

प्रिय पाठकों के सम्मुख यह पुस्तक रखने के पूर्व यह बतला ना आवश्यक समझता हूं कि इस पुस्तक के प्रणेता कौन थे ? और उन्होंने किस ध्येय से इसका प्रणयन किया।

सभी जानते हैं कि "परोपकाराय सतां विभूतयः"।

बस इसी लोकोक्ति को सफल करने वाली विभूतियों में ग्रन्थकर्त्ता श्रीहरिहरप्रसाद जी भी काशीनगर के एक प्रसिद्ध वैष्णव संत थे। आप काशी नरेश के फुफेरे भाई होते थे।

सिद्धों की खान काशी नगर में एक विद्वान् सन्यासी जी के यहां श्रीहरिहरप्रसादजी का एक शिष्य अध्ययन करने जाया करता था। एक दिन की बात है सन्यासीजी ने पढ़ाते २ उस शिष्य के, गले में कण्ठी धारण किये हुये देखकर यकायक ये कह दिया कि "गले में कंठी सदैव न धारण करना चाहिये"। उस समय उस शिष्य ने सन्यासी जी से तो कुछ न कहा किन्तु स्थान पर आकर अपने श्रीगुरुदेवजी से सन्यासी जी का कथन कह सुनाया। इसपर इन्होंने यह उत्तर दिया कि बेटा ! श्रीसन्यासीजी से प्रार्थना करना कि "स्वामीजी ! सदैव कंठी न धारण करने का कोई आर्ष प्रमाण बतलाने की कृपा कीजिये ताकि मैं आपकी आज्ञा का पालन कर सकूं।"

शिष्य ने अपने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य्य की और आकर सन्यासी जी से यही कहा। इसपर सन्यासी जी ने स्वरचित (कल्पित) पांच सात श्लोक उक्त विषय पर विद्यार्थी को सुनाये। आपने अपने इन श्लोकों को ग्रन्थों से उद्धृत बतलाकर अपने सिद्धान्त की पुष्टि की। विद्यार्थी ने इन श्लोकों को अपनी पुस्तक पर

लिख लिया। स्थान में आकर अपने गुरू श्रीहरिहरप्रसाद जी के सम्मुख उन श्लोकों को रक्खा।

इस पर श्रीहरिहरप्रसादजी को बड़ा खेद हुआ और विचारने लगे कि ये तो झगड़ा सदैव ही होता रहेगा अतः इसका निपटारा ही करना अपना परम कर्त्तव्य है'। ऐसा सोचकर उन्होंने काशी नरेश द्वारा विद्वानों की एक विराट सभा का आयोजन किया। इसमें सभी सम्प्रदाओं के विद्वानों को आमंत्रित किया गया। सभा हुई और उसमें उक्त प्रस्ताव (कंठी तिलक वैष्णव धर्म वाला) रक्खा गया।

इस सभा के पूर्व श्रीहरिहरप्रसाद जी ने पुस्तकालयों से ग्रन्थ एकत्रित करके अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए प्रमाणों में चिह्न लगा लिये थे। साथ ही सन्यासी जी के वतलाये ग्रन्थों को भी देख लिया था कि कहीं सन्यासीजी के कहे अनुसार कोई प्रमाण तो नहीं है किंतु जब कोई प्रमाण ऐसा न प्राप्त हो सका तो स्वामीजी के श्लोकों को कल्पित समझकर इस झगड़े की इति श्री के लिये इस सभा का आयोजन किया।

जब सभा में यह प्रस्ताव रक्खा गया तो ग्रन्थ खोले गये। सभी विद्वानों ने श्रीहरिहरप्रसादजी के प्रमाणों को स्वीकार किया। क्योंकि जिन ग्रन्थों में सदैव धारण करने के प्रमाण प्राप्त हुये उनमें 'सदैव कंठी धारण न की जाय' ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध न हुआ फलतः श्रीसन्यासी जी को उक्त सभा में लज्जित होना पड़ा।

अनन्तर अनेकों विद्वानों ने अपने २ सिद्धान्तानुसार तीनों तत्त्वों की (कंठी तत्त्व, तिलक तत्त्व, वैष्णव तत्त्व) सप्रमाण पुष्टि की। अपनी २ सम्मतियां प्रदान की जो प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्यमानहैं।

अब तो हमारे पाठकों को भली भांति विदित ही हो चुका होगा कि इस ग्रन्थ के कर्त्ता कौन थे और उन्होंने किस उद्देश्य से ऐसा प्रयत्न किया। इसका जानना यों भी आवश्यक था कि–

'जाने बिन न होइ परतीती । बिन परतीत होइ नहिं प्रीती ॥'
(श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी)

ग्रन्थकर्त्ता ने इस पुस्तक में चारों संप्रदाय के तिलकों का सप्रमाण वर्णन किया, किन्तु रसिकों के तिलकों पर कोई प्रकाश नहीं डाला । इस कमी को मैं तो क्या कोई भी सहृदय रसिक सहन नहीं कर सकता । अतः मैं बाध्य होकर सप्रमाण इन तिलकों का वर्णन करने के साहस से वञ्चित न रह सका । इन तिलकों का वर्णन हनुमत् संहितान्तर्गत शृंगार प्रसंग श्रीअगस्त जी और श्रीहनुमानजी के संबाद में हुआ है । जिसे इस पुस्तक में सम्मिलित कर दिया गया है ताकि उसे कोई अप्रमाणिक न समझ सके । मेरी इस अनाधिकार चेष्टा के लिए, आशा है कि भावुक जन, मुझे क्षमा करेंगे । साथ ही बस्तु को पढ़कर आनन्दित होंगे । इसके अतिरिक्त मैं यह भी प्रगट कर देना उचित समझता हूँ कि मैंने इस पुस्तकको फिर से मुद्रित करा दिए जाने का विचार क्यों ? और कैसे किया । संयोगबश इस पुस्तक के पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । पुस्तक आद्योपान्त पढ़कर प्रसन्नता तो हुई किन्तु उक्तानुसार रसिक तिलकों का वर्णन न पढ़कर बड़ा खेद भी हुआ । इसका ये प्रभाव पड़ा कि मुझे इस पुस्तक को इस रूप में आप लोगों के सम्मुख लाना पड़ा ।

इस कार्य्य में जिन २ महानुभावों ने मुझे सहायतादी उनका मैं चिर ऋणी रहूँगा । अतः सर्व प्रथम मैं स्वर्गीय श्री स्वामी सिया शरणजी महाराज (श्री मधकुरियाजी) जानकीघाट अयोध्या को श्रद्धाँजलि भेंट करता हुआ उनकी कृपा का आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस पुस्तक को (टीका कर) इस रूप में लाने के लिए पूर्ण उत्साहित किया था ।

दूसरे मैं श्रीकुंवर प्राणसिंह जू देव तहसीलदार (जागीरदार कलानी) का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के लिखने लिखाने

में पर्याप्त परिश्रम किया और अपनी वैष्णवता का पूर्णपरिचय दिया

तीसरे मैं श्रीलक्ष्मीनारायणजी वैराठी कौड़ी वाले जयपुर का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के मुद्रण कार्य्य के लिए २००) रु० देकर अपनी वैष्णव धर्मनिष्ठा एवं उदारता का संतोषजनक परिचय दिया।

अन्त में मैं श्रीमदनगोपाल शुक्ल 'विशारद' छतरपुर को भी नहीं भूल सकता जिन्होंने पुस्तक सम्पादन कार्य्य में पर्य्याप्त सहायता दी इसके लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

विशेष क्या ? प्रस्तुत पुस्तक में साधारण (अपनी) बोल चाल की भाषा पर ही विशेष ध्यान दिया गया है जिसमें लेखक के कहने का तात्पर्य्य अधिक हृदयङ्गम हो सके। पाठक स्वयं इसका अनुभव कर वैष्णव तत्त्व रहस्यों का रसास्वादन करेंगे। और इस तरह यदि उनको इस पुस्तक से किंचित् भी लाभ हुआ तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। अस्तु—

॥ सियाबर श्रीरामचन्द्रजी की जय ॥

निवेदक—

श्रीरहस्य प्रमोदभवन } श्रीराजकिशोरी वर शरणजी
स्वामी परमानन्दजी
जानकीघाट, श्रीअयोध्याजी

१-७-५३

* श्रीसीतारामाभ्यांनमः *

* श्रीतुलसी तत्त्व भास्कर *
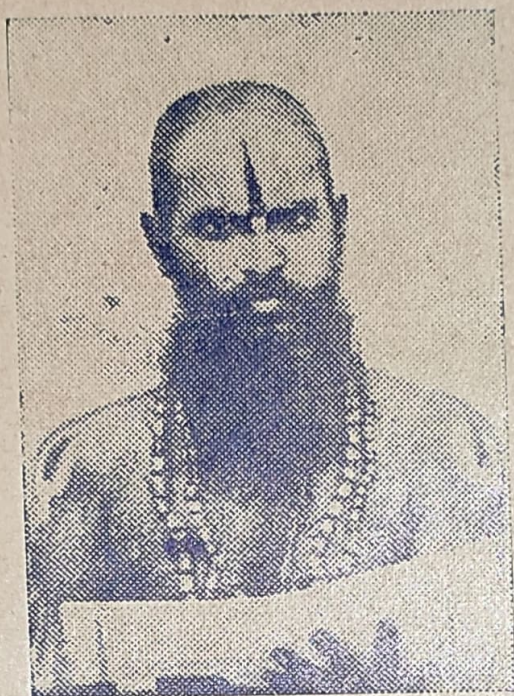
श्री श्री अनन्त श्री श्री सियारामशरण
(श्रीतपसी) जी महाराज

जयपुर मन्दिर; रहस्य प्रमोद भवन
श्रीजानकीघाट,
अयोध्याजी

* श्रीगणेशायनमः *

"तुलसी-तत्त्व-भास्कर"

* मङ्गलाचरणम् *

श्लोक—वज्राङ्गं वज्र दंष्ट्रङ्कुल दव,
दहनं कोटि सूर्य्य प्रकाशं।
रुद्रं ब्रह्मादि सेव्यं दशमुख,
भयदं काञ्चनाभं कपीशम्॥
पिङ्गाक्षं पीत वस्त्रं पवनसम,
जवं रामदूतं प्रसन्नं।
लङ्का बङ्क प्रदन्तम् कपिकुल-
तिलकं वातजातं नमामि॥१॥

ग्रन्थ संग्रहकर्त्ता श्रीस्वामी हरिहरप्रसाद जी ग्रन्थारम्भ करते हुए मङ्गलाचरण में श्रीवैष्णवाचार्य्य भक्त प्रवर श्रीहनुमानजीकी सर्व-मङ्गलकारी वंदना करते हुये कहते हैं कि "वज्र के समान पुष्ट शरीर

एवं दंत पंक्ति वाले, खल रूपी वन को अग्नि के समान नष्ट कर भस्म कर देने वाले, करोड़ों सूर्य्य के समान देदीप्त कान्तिवाले, शिव, ब्रह्मादि देवताओं द्वारा सेवित, दशमुख (लंकेश रावण) को भी अपने व्यक्तित्व से भय उत्पन्न कर देने वाले, स्वर्ण के समान आभा वाले वानरों के स्वामी कपिश्रेष्ठ, पीले नेत्र एवं वस्त्र वाले, पर्वत के समान वेग, गति, एवं सामर्थ्य वाले, श्रीरामजी के परम प्रिय दास, सदैव प्रसन्न बदन रहने वाले, लंका जैसे सुदृढ़ रमणीक तथा अगम्य स्थल को भी नम्र एवं सरल कर देने वाले, कपिकुल पूज्य पवनपुत्र श्रीहनुमानजी को मैं मन, वाणी से कर बद्ध हो प्रणाम करता हूँ।

सीतापतेः शरं नत्वा शार्ङ्गञ्चापि शरासनम् ।
कुर्वे वैष्णव तुष्टार्थं तुलसी तत्त्व भास्करम् ॥

श्रीस्वामी जी श्री सम्प्रदाय के श्री परमाचार्य्यजी की वंदना करने के अनन्तर परम आराध्यदेव श्रीसीतारामजी के आयुधों की वंदना करते हुये कहते हैं कि "श्रीसीतापति श्री रामजी के बाण व शारंग धनुष व बाणों की आसन शरासन को मैं उक्तानुसार प्रणाम करता हुआ श्रीवैष्णव भक्तों के सन्तोष के लिये तुलसी तत्व भास्कर नाम का यह ग्रन्थ संग्रह करता हूँ।

श्रीस्वामी जी (पुस्तक प्रणेता) अपने संकलित सिद्धान्तों की प्रमाणिकता में निम्नलिखित, तत्कालीन महापुरुषों प्रकाण्ड धुरंधर

विद्वानों एवं प्रसिद्ध महात्माओं व आचार्यों की सम्मतियां दे रहे हैं जो आपने उस समय इन सिद्धान्तों पर निर्णयात्मक सम्मतियां देने के लिये एकत्रित किये थे। * (देखिये भूमिका)

उपरोक्तानुसार आपने कतिपय ४५ उपर्युक्त सम्मतियों का ही अपने इस ग्रन्थमें उल्लेख किया है। वही बहुमूल्य सम्मतियां सटीक पाठकों के मनोरंजन अथवा संतोषार्थ यहां दी जाती हैं।

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य्य तारक ब्रह्मानंद सरस्वती, पंडित स्वामि शिष्य विशुद्धानंद सरस्वती स्वामिना सम्मतोऽयमर्थः ॥१॥

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य तारक ब्रम्हानन्द सरस्वती पण्डित स्वामि शिष्य विशुद्धानन्द सरस्वती स्वामी की इस विषय में सम्मति है।

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य्य तारक ब्रह्मानंद सरस्वती पंडित स्वामि शिष्य विश्वरूप स्वामिनां सम्मतोऽयमर्थः ॥२॥

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य तारक ब्रम्हानन्द सरस्वती पण्डित स्वामी शिष्य विश्वरूप स्वामी की इस विषयमें सम्मति है।

तर्क पञ्चाननोपनामकानां श्रीजयनारा-
यण शर्मणां सम्मतमिदम् ॥३॥

तर्क पंचाननोपनामक श्रीजयनारायण शर्मा की भी यही सम्मति है।

अत्रार्थे श्रीविश्वेश्वरदत्तशर्म्मणः सम्मतिः

इस विषय में विश्वेश्वरदत्त शर्मा की भी सम्मति है।

अर्थोऽयं सम्मतो विद्वच्चन्द्रशेखरशर्म्मणः ॥५

विद्वान चंद्रशेखर शर्मा की भी इस विषय में सम्मति है।

मन्यतेऽमुमर्थन्देवदत्त शर्म्मा सुधीः ॥६॥

पण्डित देवदत्त शर्म्मा इस बात को मानते हैं।

वैष्णवैर्नित्यं तुलसी माला धार्य्येत्यत्र
सम्मतिः सखारामभट्टानाम्।

वैष्णव नित्य तुलसी माला धारण करें। ऐसी सखाराम भट्ट जी की सम्मति हैं।

सदा तुलसी काष्ठ माला धारणे द्विवेदीय
नामक पण्डित रत्नपाल शर्म्मणः सम्मतिः।८

सदैव तुलसी काष्ट माला धारण किये जाने में द्विवेदी उपनामक पण्डित रत्नपाल शर्मा की सम्मति हैं।

सम्मतिरत्र श्रीमत्त्रिवेणी निवासि शिव-सहाय शर्म्मणः ॥ ९ ॥

श्रीमत्त्रिवेणी निवासी शिव सहाय शर्मा की इसमें सम्मतिहै

कृत सम्मति कोऽत्र द्विवेदीय वस्तीराम शर्मा ।१०।

इस विषय में द्विवेदी वस्तीराम शर्मा की सम्मति है।

वैष्णवागमोक्त दीक्षा वद्भिर्भोजनादि सर्वं कालेऽपि तुलसी माला धार्य्यैवनत्याज्येत्यत्र सम्मतिः राजाराम शास्त्रि शर्म्मणः ॥११॥

वैष्णव शास्त्रोक्त विधिसे दीक्षा ग्रहण करने वालों को भोजनादि सर्वकाल में भी तुलसी मालाधारण करना ही चाहिये। उसको कभी भी न उतारना (त्यागना) चाहिये ऐसी राजारामशर्मा शास्त्री की सम्मति है।

वैष्णवागमोक्त दीक्षा वद्भिर्भोजनादि सर्वकालेऽपि तुलसी मालाधार्य्यैवनत्याज्येत्यत्र

सम्मतिर्वालशास्त्रिणः ॥ १२ ॥

वैष्णव शास्त्रोक्तदीक्षा वाले वैष्णव जनों को भोजनादि सर्व काल में भी तुलसी माला धारण ही करना चाहिये। त्याग न करना चाहिये। इस विषय में वाल शास्त्री की ऐसी सम्मति है।

एवं वापूदेव शास्त्रिणोऽपि सम्मतिः।

और इसी प्रकार बापूदेव शास्त्री की भी सम्मति है।

एवं पंडित यागेश्वरशर्म्मणोऽपि सम्मतिः

और ऐसी ही पण्डित यागेश्वरशर्मा की भी सम्मति है।

गोविन्ददेव शास्त्रिणश्च।

गोविन्ददेव शास्त्री का भी यह मत है।

वैष्णवैर्नित्त्यन्तुलसीमालाधार्य्येत्यत्र सम्मतिरनन्तराम भट्टानाम् ॥१६॥

वैष्णवों को नित्य तुलसी माला धारण करना चाहिये। इस विषय में अनन्तराम भट्ट की सम्मति है।

समान्योऽयमर्थः सुकुलोपपदश्रीधरशर्मपंडितैः ॥

सुकुलोपपद पंडित श्रीधरशर्मा ने इस बातको माना है।

इममर्थं सम्मनुते श्री पंडित माध्व मता-
नुयायि माधवाचार्यः ॥ १८ ॥

माध्वमतानुयायी श्रीपण्डित माधवाचार्य की इस विषय में सम्मति है।

अत्रार्थे सम्मतिर्वामनाचार्याणाम् ॥१९

वामनाचार्य्य की भी इस विषय में सम्मति है।

कृत सम्मतिरत्राम्बिकादत्तशर्म्मा ॥२०॥

इस विषय से अम्बिकादत्त शर्मा सहमत हैं।

सम्मतिरत्रार्थे श्रीराधामोहनदेव शर्म्मणाम् ।२१।

श्रीराधामोहन देव शर्मा भी इससे सहमत हैं।

सम्मतिरत्रार्थे कालीप्रसाद शर्म्मणाम्।

कालीप्रसाद शर्म्मा भी इस बात को मानते हैं।

सम्मतिरत्रार्थं हरि कृष्ण शर्म्मणः ॥२२

हरिकृष्ण शर्म्मा इससे सहमत हैं।

सममंस्तामुमर्थं द्विवेदोपाह्व भैरवदत्तशर्म्मा ॥

द्विवेदोपाह्व भैरवदत्त शर्म्मा ने इस मत को माना है।

सममान्योयमर्थो द्विवेदोपाह्व हरिदत्तशर्म पंडितेन ॥ २५ ॥

द्विवेदोपाह्व पंडित हरिदत्त शर्मा नेभी इसे स्वीकार किया है।

सम्मतिरत्रार्थे देववरोपाह्व नारायण शर्म्मणः ॥२६॥

इस विषय में देववरोपाह्व नारायण शर्मा की सम्मति है।

सदा तुलसी काष्ठ माला धारणेगोपाल शर्म्मणः ॥ २७ ॥

सदैव तुलसी काष्ट माला धारण करने में गोपाल शर्मा की सम्मति है।

सम्मातिरत्रार्थे वारस्करोपाह्व कृष्ण शर्म्म शास्त्रिणः ॥ २८ ॥

इस विषय में वारस्करो पाह्व कृष्ण शर्म्मा शास्त्रीकी सम्मतिहै

अत्रार्थे विराट् क्षेत्रवासि अयाचितोपाह्व दीक्षित यज्ञेश्वर शर्म्मणः।

इस विषय में विराट् क्षेत्र निवासी अयाचितोपाह्व दीक्षित यज्ञेश्वर शर्मा की भी सम्मति है।

सम्मतिरत्रगणेश श्रोत्रिणः॥ ३० ॥

गणेशप्रसाद वेदान्ती की भी ऐसी सम्मति है।

सम्मतिरत्र रामचन्द्र शास्त्रिणः॥ ३१॥

रामचन्द्र शास्त्री की इसमें सम्मति है।

सम्मतिरत्र घनश्याम शर्म्मणः॥३२॥

इसमें घनश्याम शर्मा की सम्मति है।

सम्मतिरत्रार्थे पण्डित वेचनराम शर्मणः।

इसमें पण्डित वेचन राम शर्मा की सम्मति है।

सम्मतिरत्र शीतलप्रसाद शर्म्मणः॥ ३४

शीतलप्रसाद शर्मा इससे सहमत हैं।

अत्रार्थे सम्मतिः श्रीविश्वनाथ शर्म्मणः।

इस विषय में विश्वनाथशर्मा की सम्मति है।

सम्मतिरत्रार्थे श्रीकैलाशनाथ शर्म्मणः।

इस विषय में कैलाशनाथ शर्मा की सम्मति है।

अत्रार्थे कृतसम्मतिः श्रीप्यारे शर्म्मा मिथिलाधीश सम्मानितः॥३७॥

इस विषय में मिथिलेश सम्मानित श्रीप्यारेशर्मा की सम्मति है।

सम्मतिरत्रार्थे देवकृष्ण शर्म्मणः॥३८॥

इस विषय में देवकृष्ण शर्मा की सम्मति है।

सम्मतिरत्र हरिशरण शर्म्मणः॥ ३९॥

इसमें हरिशरण शर्मा की सम्मति है।

सम्मतिरत्रार्थे श्रीश्रीपति शर्म्मणो वेती-येश पण्डितस्य॥ ४०॥

इस विषय में वेतीयेश पण्डित श्रीपति शर्मा की सम्मति है।

सम्मतोऽयमर्थो द्विवेदि श्रीरमापति शर्म्मणः

इस विषय में द्विवेदी श्री रमापति शर्मा की सम्मति है।

सम्मतिरत्रार्थे विद्याधर व्यासस्य ॥ ४२

विद्याधर व्यास की भी इसमें सम्मति है।

सम्मतिरत्रार्थे व्यासोपनामकस्य परमेश्वर दत्तशर्म्मणः ॥ ४३ ॥

इस विषय में व्यासोपनामक परमेश्वरदत्त शर्मा की सम्मतिहै

सम्मतिरत्रार्थे बलदेव शर्मणः ॥ ४४ ॥

इससे बलदेव शर्मा भी सहमत हैं।

कृतसम्मतिकोऽत्र पाण्डेयोपाह्व जानकी-प्रसाद शर्म्मा ॥ ४५ ॥

इसमें पाण्डेयोपाह्व जानकीप्रसाद शर्मा की भी सम्मति है। इत्यादि।

अब श्री स्वामीजी अपने मूल ग्रन्थ को प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि "भक्तों के लिये तुलसी माला धारण करने का ऋषियों द्वारा विधान किया गया है अतः उनके लिये यह आवश्यकीय ही नहीं अनिवार्य्य है कि वह अपने इष्टदेव को अर्पित की गई तुलसी माला धारण करें। इसकी पुष्टि में आप, श्रीमद्गोपालभट्टजी द्वारा उद्धृत अपने हरिभक्तिविलास नामक ग्रन्थ में जो श्रीगरुड़ पुराण से लिया गया है, निम्नलिखित वचनों का उल्लेख करते हैं।

अथ तुलसी माला धारण विधिः

'गरुड़पुराण'

सन्निवेद्यैव हरये तुलसी काष्ठ सम्भवाम् ।
मालां यश्चस्वयन्धत्ते स: वै भागवतोत्तमः ॥१
हरये नार्पयेद्यस्तु तुलसीं काष्ठ सम्भवाम् ।
मालांधत्ते स्वयम्मूढ़: स याति नरकं ध्रुवम् ॥२

(श्रीमद्गोपाल भट्ट कृत "हरिभक्तिविलास से)

जो भक्त जन तुलसी माला श्री भगवान् को समर्पण करने के पश्चात् अपने शरीर में धारण करते हैं वे ही भक्त जन भगवान् के उत्तम भक्त हैं ॥ १ ॥ जो मनुष्य तुलसी माला को बिना भगवान् को अर्पण किये स्वयं अपने शरीर में धारण कर लेता है वह मूर्ख अवश्य नरकगामी होता है ॥ २ ॥

ये तो हुआ कि भक्त वैष्णव को तुलसी माला क्यों धारण करना चाहिये । अब श्री स्वामी जी ये बतलाते हैं कि किस प्रकार तुलसी माला धारण करने का विधान है ।

क्षालिताभ्यञ्चगव्येन मूल मन्त्रेण मन्त्रिताम् ।
गायत्र्या चाष्ट कृत्वो वै मंत्रितां धूपयेच्चताम ॥३

विधिवत् परया भक्त्या सद्यो जातेन पूजयेत् ।
तुलसी काष्ठ सम्भूते माले कृष्ण जन प्रिये ॥४
विभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां रामवल्लभाम् ।
तथा मां कुरु देवेशि नित्यं विष्णु जन प्रियम् ॥
दानेलाधातुरुद्दिष्टो लासिमां हरिवल्लभे ।
भक्तेभ्यश्च समस्तेभ्यस्तेन माला निगद्यते ॥६
एवं सम्प्रार्थ्य विधिवन्मालां रामगलेऽर्पिताम् ।
धारयेद्वैष्णवोयोवै गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥७

पञ्च गव्य से माला को धोकर मूल मंत्र से उसे आमन्त्रित करने के पश्चात् आठ बार गायत्री से मंत्रित करके धूपित करना चाहिये ॥ ३ ॥ अनन्तर सद्योजातेन" इस वेदमन्त्र से विधिपूर्वक माला का पूजन करना चाहिये । फिर पूजन कर चुकने के पश्चात् माला से प्रार्थना करनी चाहिये कि तुलसी काष्ठ से बनी हुई भगवत् भक्तों की प्यारी, हे माले ॥ ४ ॥ मैं तुमको अपने कण्ठ में धारण करता हूँ । मुझे आप रामप्रिय बना दें । जिस प्रकार आप विष्णुप्रिय हैं व जैसी आप सदैव भगवत् भक्त प्रिय हो हे देवेशि ! तैसे ही आप मुझे भी सदैव विष्णु जन प्रिय बना दीजिये ॥ ५ ॥
ला" धातु दानार्थ द्योतक है । हे हरिबल्लभे ! समस्त भक्तार्थ आप

मुझको दान करती हो। इकी कारण से आप "माला" कही जाती हो ॥ ६ ॥ इस प्रकार (उपरोक्तानुसार) आदर व अनुरागपूर्वक प्रार्थना करते हुये विधिपूर्वक माला को श्रीरामजी के कण्ठार्पित कर जो अपने गले में धारण करता है वह भक्त वैष्णव पद को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

श्री स्वामी जी तुलसी माला को विधिपूर्वक किस प्रकार धारण करना चाहिये यह बतलाकर अब आप ये बतलाते हैं कि विधिपूर्वक माला धारण करने से क्या लाभ है।

अथ मालाधारणमाहात्म्यम्

(तत्रैव स्कान्दे) अथवा वही बात स्कन्द पुराण में कही गई है। देखिये—

धात्री फल कृता माला तुलसी काष्ठ सम्भवा।
दृश्यते यस्य देहेतु स वै भागवतोत्तमः ॥८
तुलसीदलजां मालाङ्कण्ठस्थां वहतेतु यः।
विष्णूत्तीर्णां विशेषेण सनमस्योदिवौकसाम् ॥
तुलसीदलजामाला धात्रीफल कृतापि च।
ददाति पापिनाम् मुक्तिङ्किं पुनर्विष्णु सेविनाम् ॥

स्कन्द पुराण

आवले के फल और तुलसी काष्ठ की बनी हुई माला जिस व्यक्ति के शरीर में दिखाई देती है वही भक्तों में उत्तम भक्त है।।८।। जो मनुष्य तुलसी दल की माला अपने कण्ठ में धारण करता है और विशेषकर भगवान को चढ़ी हुई माला धारण करता है उसे देवगण तक नमस्कार करते हैं ।। ६ ।। तुलसीदल एवं धात्री फल की माला जब पापियों को मोक्ष देने वाली है। फिर विष्णु भक्तों की बात ही क्या है उन्हे तो देती ही है।

तत्रैव गारुड़े (वही गरुड़ पुराण में लिखा है)

तुलसी काष्ठ सम्भूतां यो मालां वहते नरः ।
प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति नाशौचन्तस्यविग्रहे ॥
तुलसी काष्ठ मालाभिर्भूषितो भ्रमते यदि ।
दुःस्वप्नन्दुर्निमित्तञ्च न भयं शस्त्रजं क्वचित् ॥

(गरुड़ पुराण)

जो मनुष्य तुलसी काष्ठ की बनी हुई माला धारण करता है उसके लिये कोई प्रायश्चित नहीं है और न उसके शरीर में अशौचता रहती है ।। ११ ।। तुलसी काष्ठ की माला पहिने हुये विचरते मनुष्य को दुःस्वप्न दुष्ट शकुन तथा, शस्त्रास्त्र आदि से कहीं भी भय नहीं होता है ।।१२।।

श्रुति प्रकाशिकोदाहृतैर्यज्ञोपवीतवद्धार्या

सदा तुलसिमालिकेत्यादि वचनैश्च तुलसी मालायाः सर्वदाधारणमेव युक्तमिति सिद्धांतः।

श्री स्वामी जी कहते हैं कि "श्रुतिप्रकाशिका" नामक ग्रन्थ में उदाहृत वचन से कि 'तुलसी की माला सदैव यज्ञोपवीत के समान धारण करना चाहिये।' सिद्ध है कि तुलसी माला का सदैव धारण करना योग्य है। अतः यह सिद्धांत हो जाता है।

"एकादशी तत्वे" रघुनन्दन भट्टाचार्य्य स्मार्तोदाहृतम्। 'जयसिंह कल्पद्रुमे' जयसिंहोदाहृतम् गरुड़पुराण वचनम्। स्कान्द वचनञ्च

रघुनंदन भट्टाचार्य्य स्मार्त्त ने 'एकादशी तत्व' नामक ग्रन्थ में उद्धृत किया है। 'जयसिंह कल्पद्रुम' नामक पुस्तक में जयसिंह के उद्धृत किये हुये गरुड़ पुराण के भी यही बचन है व स्कन्द पुराण में भी यही कहा गया है। देखिये–

तुलसीं विनाया क्रियते न पूजा स्नानञ्च तद्यत्तुलसीं विना कृतम्। भुक्तन्न तद्यत्तुलसी विवर्जितं पीतन्न तद्यत्तुलसीविवर्जितम्। १३

स्नाने दाने तथा ध्याने प्राशने केशवार्चने।
तुलसी दहते पापं कीर्तने रोपणे कलौ ॥१४

(स्कन्दपुराण)

तुलसी के बिना जो पूजा की जाती है वह पूजा नहीं है तुलसी के बिना स्नान, स्नान नहीं है। तुलसी के बिना भोजन, भोजन नहीं व तुलसी के बिना जलपान, जलपान नहीं। तात्पर्य कहने का यह है कि उक्त बातें बिना तुलसी के वर्जित हैं व शुभ नहीं हैं॥ १३॥ स्नान, दान, ध्यान, भोजन, विष्णु पूजन तथा कीर्तन में व रोपण आदि में इस कलिकाल के समय में तुलसी पापों को जला-कर भस्म कर देती है ॥ १४॥

तथा च श्रुतिप्रकाशिकोदाहृतस्कान्दवचनम्

और यही 'श्रुति प्रकाशिका' में उद्धृत स्कन्दपुराणके वचनहैं

तुलसीकाष्ठमालांयो धृत्वा स्नानं समाचरेत्।
पुष्करे च प्रयागे च स्नातन्तेन मुनीश्वर ॥१५

(स्कन्दपुराण)

हे मुनीश्वर जो मनुष्य तुलसी काष्ठ की माला को धारण करके स्नान करता है वह पुष्कर क्षेत्र व प्रयागराज में स्नान करने का फल पाता है॥ १५॥

तत्रैव 'पाद्मवचनमपि' पद्मपुराण में भी ऐसा ही कहा गया है।

स्नानकाले तु यस्याङ्गे दृश्यते तुलसीशुभा।
गङ्गादि सर्वतीर्थेषु स्नातन्तेन न संशयः ॥१६

(पद्मपुराण)

जिसके शरीरमें स्नान करते समय शुभ तुलसी माला दिखाई देती है वह गंगा आदि सर्व तीर्थों में स्नान करने का फल पाता है। इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है ॥ १६ ॥ अतएव गौरी तन्त्रेऽपि। गौरीतन्त्र में भी ऐसा ही प्रमाण है।

स्नानकाले च यस्याङ्गे दृश्यतेतुलसीशुभा।
गङ्गादि सर्व तीर्थेषु स्नानन्तस्य न संशयः ॥

(गौरीतन्त्र)

स्नान करते समय जिसके शरीर में तुलसी माला रहती है उसको गंगादि समस्त तीर्थों में स्नान करने का फल प्राप्त होता है। इसमें संदेह नहीं है ॥ १७ ॥

इत्यादितदुदाहृते। 'स्नानकाले यदा कण्ठे इति श्लोके उक्तायुक्तिरपि विरुद्धा तथाहि। यदि तुलसीमालास्पर्शजलस्यपादपतना-

द्दोषः स्यात्तर्हि गङ्गादिस्नानेऽपिदोषप्रसङ्गः। पादस्पर्शं विना स्नानासम्भवात्। किञ्च सर्वदा विष्णुरूपतिलकधारणस्यापि निर्वाहो न दृश्यते। स्नानकालेतत्प्रक्षालनजलस्यापि पादस्पर्शकर्तृत्वात्। अन्यथा तुलसीदलमिश्रितजलेनस्नानविधेरप्यसम्भवः स्यात्। पादस्पर्शभयात्। तद्विधिश्च दृश्यते रामार्च्चन चन्द्रिकायाम्स्नानप्रकरणे।

श्री स्वामी जी कहते हैं कि (देखिये भूमिका) 'स्नान काले यदा कण्ठे' इत्यादि कल्पित अप्रमाणिक श्लोकों के उदाहरणों से उन्हीं से कही गई युक्ति भी विरुद्ध पड़ती है। अतः आप अर्थान्तर से उसे नीचे लिखे अनुसार दिखला रहे हैं। कि यदि तुलसी माला के स्पर्श जल के पैरों पर गिरने से दोष होता है तो गंगादि स्नान में भी दोष का प्रसंग आता है। क्योंकि पादस्पर्श बिना स्नान असंभव है। साथ ही सर्वदा विष्णुरूप तिलक धारण का भी निर्वाह होता नहीं दिखाई देता है। क्योंकि स्नान काल में चंदन का प्रक्षालन जल भी पादस्पर्श करेगा। इसके अतिरिक्त पादस्पर्श भय से तुलसी मिश्रित जल से स्नान विधान भी असंभव होगा। जो विधि रामा-

र्चन चंद्रिका नामक पुस्तक के स्नान प्रकरण में वर्णन की गई है। देखिये-

शालिग्रामशिलातोयं तुलसीगन्धमिश्रितम्।
कृत्वाशङ्खं भ्रामयंस्त्रिः प्रक्षिपेन्निजमूर्द्धनि ॥

(रामार्चन चंद्रिका)

शालिग्राम सिला प्रक्षालित जल तुलसी गंध मिश्रित कर शंख में ले तीन बार चारो ओर घुमाकर अपने मस्तक पर सिंचन करे ॥ १८ ॥

तथा च हरिभक्तिविलासे श्रीमद्गोपाल भट्टोदाहृतपाद्मवचनम्।

और इसी प्रकार 'हरि भक्ति विलास' नामक ग्रन्थ में श्रीमद् गोपाल भट्ट के उद्धृत किये हुये पद्मपुराण के वाक्य हैं। देखिये-

द्वारिकाचक्रसंयुक्तशालग्रामशिलाजलम्।
शङ्खे कृत्वातु निःक्षिप्तंस्नानार्थन्ताम्रभाजने ॥
'तुलसीदलसंयुक्तं ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥

(पद्मपुराण)

द्वारिका चक्र सहित शालग्राम शिला जल शंख में रखकर

स्नान के लिये ताम्रपात्र में रक्खे। और उसमें तुलसीदल-जल मिला कर स्नान करे तो ब्रह्महत्या का नाश होता है।

श्रुतिप्रकाशिकोदाहृतस्कान्दवचनञ्च।

श्रुति प्रकाशिका में उद्धृत स्कन्दपुराण के भी वचन हैं।

तुलसीकाष्ठमालां यो धृत्वा भुङ्क्ते द्विजोत्तमः
सिक्थे २ स लभते वाजिमेधफलं मुने ॥ २०

(स्कन्दपुराण)

जो द्विज तुलसी काष्ठ निर्मित माला को धारण करके भोजन करता है। उसे हे मुने! ग्रास २ में अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है ॥ २० ॥

तत्रैव गौरीतन्त्रेऽपि। इसी प्रकार गौरीतन्त्र में कहा है।

तुलसीधारिणं विप्रं यः श्राद्धे भोजयेत्प्रिये।
तस्य तुष्यन्ति पितरो मन्वन्तरशतावधौ ॥
तुलसी मालिकान्धृत्वा योभुङ्क्ते गिरिनन्दिनि
सिक्थे २ स लभते वाजपेयशताधिकम् ॥ २२
दीक्षानन्तरमीशानियो भुङ्क्ते तुलसीं विना।
तदन्नं शूकरमलं तज्जलंसुरयासमम् ॥ २३

नदेशकालनियमो न स्थाननियमस्तथा ।
विद्यते पर्वतसुते तुलसीमणिधारणे ॥ २४

(गौरीतंत्र)

देवों के देव श्री महादेवजी जगज्जननी श्रीपार्वतीजी से गौरीतंत्र में तुलसी धारण महात्म्य के विषय में बतलाते हुये कहते हैं कि हे प्रिये ! तुलसी धारण करने वाले ब्राह्मणों को जो मनुष्य श्राद्ध में भोजन करवाता है उसके पितृ देवता सौ मन्वन्तर तक संतोष पाते हैं ॥ २१ ॥ हे गिरिनंदिनी ! जो मनुष्य तुलसी माला धारण किये हुये भोजन करता है उसे ग्रास २ में वाजपेय यज्ञ से सौगुना अधिक फल मिलता है ॥ २२ ॥ हे ईशानि ! जो मनुष्य दीक्षा लेकर बिना तुलसी के भोजन करता है उसका अन्न शूकर-मल तुल्य है व उसका जल मदिरावत् है ॥ २३ ॥ हे पर्वत सुते ! तुलसी माला धारण करने के लिये देश काल स्थान आदि का कोई नियम नहीं है। इसे शीघ्र ही समय मिलने पर धारण कर ले ॥ २४ ॥

तत्रैव पाद्मे । वही पद्मपुराण में कहा गया है ।

तुलसीमालिकान्धृत्वा यो भुङ्क्ते गिरिनन्दिनि ।
सिक्थे २ स लभते वाजपेयफलं शुभम् ॥२५
बहुना किमिहोक्तेन शृणुत्वं वरवर्णिनि ।

विड्डुत्सर्गादि कालेन त्याज्यातुलसिमालिका ॥
अन्त कालेऽपियस्याङ्गं तुलसी मालिकास्पृशेत् ।
तस्यदेहोद्भवं पापन्तत्क्षणादेवनश्यति ॥२७
यत्कंठे तुलसीं नास्ति ते नरा मूढमानसाः ।
अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं पीयूषं रुधिरम्भवेत् ॥२८
ततस्सर्वेषु कालेषु धार्य्या तुलसिमालिका ।
क्षणामर्द्धं तद्विहीनोऽपि विष्णुद्रोही भवेन्नरः ॥२९

(पद्मपुराण)

हे गिरि नंदिनी ! तुलसी माला धारण करके जो मनुष्य भोजन करता है उसे प्रत्येक सिक्थ में सुन्दर वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है ॥ २५ ॥ हे वर वर्णानि ! सुनिये, यहां अब अधिक कथन से क्या ? मल त्यागादि काल में भी तुलसी माला को नहीं त्यागना चाहिये ॥ २६ ॥ अंत काल में जिस शरीर को तुलसी माला का स्पर्श हो जाय उस शरीर के पाप उसी क्षण नष्ट होजाते हैं ॥ २७ ॥ जिसके शरीर में (कंठ में) तुलसी की माला नहीं है। वह मनुष्य मूर्ख हैं। उनका अन्न विष्ठा के समान व जल मूत्र के तुल्य और अमृत रक्त के समान है ॥ २८ ॥ इसलिये सर्वकाल में तुलसी माला धारण करना चाहिये । आधे क्षण भी तुलसी माला से रहित मनुष्य विष्णु द्रोही होता है ॥ २९ ॥

तत्रैव गारुड़े । वही गरुड़ पुराण में भी लिखा है ।

प्रायश्चित्तन्नतस्यास्ति नाशौचन्तस्य विग्रहे ।
तुलसीकाष्ठसम्भूतं शिरोवाहुविभूषणम् ।।३०

(गरुड़ पुराण)

जिसका शिर व बाहु तुलसी माला से विभूषित है उसको कोई भी प्रायश्चित नहीं और न उसके शरीर में अशौच है ।।३०।।

तत्रैव स्कान्देऽपि । वही स्कन्दपुराण में भी कहा है ।

यज्ञोपवीतवद्धार्य्या कण्ठे तुलसिमालिका ।
नाशौचन्धारणे तस्या यतस्सा ब्रह्मरूपिणीत ॥

(स्कन्दपुराण)

यज्ञोपवीत के समान तुलसी माला कण्ठ में धारण करना चाहिये । उसके सदैव धारण करने में कोई अपवित्रता नहीं, क्योंकि वह ब्रह्मस्वरूपिणी है ।। ३१ ।।

अयम् भावः । यथा यज्ञोपवीत त्यागेन ब्रह्मकर्म विमुखत्वन्तथा तस्याः क्षणमात्र त्यागेन भगवद्विमुखत्वमिति ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे यज्ञोपवीत त्यागने से ब्रह्म

कर्म विमुखत्व है वैसे ही तुलसी माला के त्यागने से भगवत् विमु-
खत्व है।

अतएव गौरीतन्त्रे। इसीसे गौरी तंत्र में कहा गया है।

यज्ञोपवीतवद्धार्या सदा तुलसिमालिका।
क्षण मात्र परित्यागाद्विष्णुद्रोही भवेन्नरः॥३८

(गौरीतंत्र)

तुलसी की माला यज्ञोपवीत के समान सदा धारण करना चाहिये। उसके क्षणमात्र त्यागने से मनुष्य विष्णु द्रोही होता है॥

पुनस्तत्रैव नारद पञ्चरात्रे च। और वही नारद पञ्चरात्र भी कहता है।

अशौचेप्यनाचारे काले काले च सर्वदा।
तुलसी मालिकान्धत्ते स याति परमम्पदम्॥३३

(नारद पंचरात्र)

अशौच, अनाचार एवं सदैव सर्वकाल में जो तुलसी माला धारण करता है वह परमपद का भागी होता है।

**हरिभक्तिविलासे श्रीमद्गोपाल भट्टमाधवो-
द्धाहृतं एकादशी तत्वे रघुनन्दन भट्टाचार्य्य**

स्मार्तोदाहृतम् । जयसिंह कल्पद्रुमे जयसिंहो दाहृतम् । गरुड़पुराण पद्मपुराण वचनञ्च।

हरिभक्तिविलास में श्रीमद्गोपाल भट्ट माध्वोदाहृत व एकादशी तत्व में रघुनंदन भट्टाचार्य्य स्मार्तोदाहृत तथा जयसिंह कल्पद्रुम में जयसिंहोदाहृत गरुड़पुराण व पद्म पुराण के वचन हैं।

धारयन्ति न ये मालां हैतुकाः पापबुद्धयः ।
नरकान्न निवर्त्तन्ते दग्धाः कोपाग्निना हरेः ॥
धात्रीफलकृतां मालां कण्ठस्थां योवहेन्नहि।
वैष्णवो न स विज्ञेयो विष्णुपूजारतो यदि ॥३५

(गरुड़ व विष्णुपुराण)

जो तर्कवादी पाप बुद्धिजन तुलसी माला धारण नहीं करते वे परमात्मा के क्रोधरूपी अग्नि से जल जाते हैं और उनका नरक से उद्धार नहीं होता है॥ ३४॥ जो धात्रीफल की माला को धारण नहीं करता वह भगवत् पूजन में तत्पर रहते हुए भी वैष्णव नहीं है।

जयसिंहकल्पद्रुमीय भक्तिपुराणस्थवामनपुराण वचनञ्च।

जयसिंह कृत कल्पद्रुम के भक्ति पुराण गत वामन पुराण के वाक्य हैं कि–

पूजा तु तुलसीपत्रैर्मया कार्य्या सदैवहि ।
तुलसीकाष्ठसम्भूता मालाधार्या सदाहरेः ॥

(वामनपुराण)

सदैव मेरे कार्य्य अथवा मेरी पूजा तुलसीदल से करना चाहिये । भगवान को अर्पण कर तुलसी काष्ठ की बनी हुई माला को सर्वदा धारण करना चाहिये ॥ ३६ ॥

श्रुतिप्रकाशिकासरोजसुन्दरोदाहृतस्मृतिः ।

श्रुतिप्रकाशिका सरोज सुन्दर में उद्धृत स्मृति वाक्य हैं ।

तुलसीकाष्ठसम्भूतांमालां यो वहते द्विजः ।
शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वापि ब्रह्मभूयान्न संशयः ॥ ३७

जो ब्राह्मण तुलसी को धारण करता है वह पवित्र हो अथवा अपवित्र हो । वह ब्रह्मस्वरूप होकर मोक्ष को पाता है । इसमें संशय नहीं है ।

श्रीमद्गोपाल भट्टोदाहृत विष्णुधर्म्मोत्तर वचनञ्च ।

श्रीमद्गोपाल भट्ट द्वारा उद्धृत विष्णु धर्मोत्तर पुराण के वाक्य हैं।

तुलसी काष्ठ मालाञ्च कण्ठस्थां वहते तु यः।
अप्यशौचोप्यनाचारो मामेवैति न संशयः॥

(विष्णु धर्मोत्तर पुराण)

जो मनुष्य तुलसी काष्ठ की माला धारण करता है वह अपवित्र व अनाचार हो, मुझे प्राप्त कर लेता है इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३८॥

'कल्परत्नावल्यां' रामचंद्रभट्टेन, 'अनूपविलासे' दीक्षितमणिरामेण, 'विधानपारिजाते' प्रथम स्तवके अनन्त भट्टेन, 'हरिभक्तिविलासे' श्रीमद्गोपाल भट्टेन, 'हरिभक्तिभास्करे' भुवनेश्वरदेवेन, 'धर्मसारे' पुरुषोत्तमेण, विष्णुधर्म्मोत्तरवचनं स्कान्दवचनञ्चोदाहृतन्तथाहि।

कल्प रत्नावली में रामचन्द्र भट्ट ने, अनूपविलास में दीक्षित मणीराम ने, विधान पारिजात के प्रथम स्तवक में अनन्त भट्ट ने,

हरिभक्तिविलास में श्रीमद्गोपाल भट्ट ने, हरिभक्तिभास्कर में भुवनेश्वर देव ने, धर्मसार में पुरुषोत्तम ने, अपनी २ कृतियों में विष्णु धर्मोत्तर व स्कन्दपुराण के वाक्य उद्धृत किये हैं। और अर्थान्तर न्यास से इन बातों को और ही स्पष्ट करते हैं।

मालायुग्मञ्चयोनित्यंधात्रीतुलसिसंभवम् ।
वहते कण्ठदेशेचकल्पकोटिदिवं वसेत् ॥३९
नजह्यात्तुलसीमालान्धात्रीमालांविशेषतः ।
महापातकसंहर्त्रीन्धर्म कामार्थदायिनीम् ॥४०

(विष्णुधर्मोत्तर एवं स्कन्दपुराण)

जो वैष्णव धात्री फल व तुलसी काष्ठ निर्मित माला ऐसी दोनों मालाओं को कण्ठ में धारण करता है वह एक कल्प कोटि वर्ष तक स्वर्गवास करता है ॥ ३९ ॥ तुलसी माला का और विशेष कर धात्री माला को कभी न त्यागना चाहिये क्योंकि ये मालायें पातकों तक को नष्ट कर देने वाली व धर्म अर्थ कामादि की देने वाली हैं।

'ननु माला युग्मञ्चयो नित्यमिति बचनम् ।'
'न जह्यात्तुलसीमालामिति वचनञ्च ॥' 'यज्ञोपवीतवद्धार्या सदातुलसिमालिकेति वचनञ्च ।'

'क्षणमात्र परित्यागद्विष्णुद्रोही भवेन्नरः इति वचनञ्च ॥'

श्रीस्वामीजी (ग्रन्थकर्ता) कहते हैं कि उपरोक्तानुसार लगभग सभी आर्ष ग्रन्थों में जहाँ इस विषय पर कहा गया है वहाँ यही कहा है कि 'अवश्य ही दोनों माला नित्य ही पहिनना चाहिये । ये वाक्य हैं । तुलसी माला का त्याग न करना चाहिये । ऐसे वचन हैं । ऐसे ही वचन हैं कि तुलसी माला को यज्ञोपवीत की तरह सदैव पहिने ही रहना चाहिये । यहाँ तक कहा गया है कि एक क्षण भरके लिये माला का परित्याग मनुष्य को विष्णुद्रोही बनाता है । ऐसे २ वचन हैं ।

भोजनादि निषिद्धकाल भिन्ने क्षणमात्र परित्यागात्प्रत्यवाय बोधकमितिचेन्न भोजनादि काल तुलसीधारण निषेधक वचनानाम प्रामाणिकत्वात् ॥ भोजनादिकाले प्रामाणिक धारण बोधक वचनान्निर्विषयत्वापत्तेश्च (यत्तु) 'ये निवन्धन्ति तुलसीं कण्ठे ज्ञान विमोहिताः । सर्वधर्म्म विनिर्मुक्तास्ते यान्ति यम सादनम् ॥ कंठे वद्ध्वातु तुलसीं मिथ्या

जल्पन्ति ये नराः। ते सदा पापिनो ज्ञेया विष्णुधर्मवहिर्मुखाः।

(इति ब्रह्माण्ड पुराणत्वेन प्रकल्पितम् श्लोकद्वयमुदाहृत्य तुलसीमालाधारणं निषिद्ध मित्युक्तं तदसत प्रसिद्ध निबन्धेष्वदर्शनात्) तुलसी माला रहित पुरुषस्य मिथ्या सम्भाषण विध्यश्रवणाच्च (निबन्धेषु यज्ञोपवीतवद्धार्या सदा तुलसिमालिकेत्यादिर्नाद्विरुद्ध वचन दर्शनाच्च ये कण्ठलग्नतुलसी नलिनाक्षमालेत्यादि तदुदाहृत वचनैर्विरोधाच्च नहि तुलसि मालायाः कण्ठलग्नत्ववन्धनमन्तरा सम्भवति नापि कण्ठे वद्दुग्धादि लेपनपूर्वकतुलसी गुटिका विन्यासोऽवलोकितो लोके)

भोजनादि निषिद्धकाल के अतिरिक्त काल में क्षणमात्र के लिये भी परित्याग करने से प्रत्यवाय बोधक होता है। दूसरे भोजनादि काल में तुलसी धारण निषेधक वचनों का भी प्रमाण नहीं है। तीसरे भोजनादि काल में प्रमाणिक मालाधारण बोधक वचनों

से निर्विषयत्व की आपत्ति होती है। अतः जो ऐसा कहा गया है कि 'जो मनुष्य ज्ञान मूढ होकर अपने कण्ठ में तुलसी माला नहीं बांधते, वे सब धर्म से रहित होकर यमलोक जाते हैं। व जो मनुष्य तुलसी कण्ठ में पहिन कर झूठ बोलते हैं उन्हें सदा पापी व वैष्णव धर्म से विमुख जानना चाहिये ।।' ऐसे कुछ श्लोकों की कल्पना करके लोगों ने ब्रह्माण्डपुराण में सम्मिलित कर दिये हैं जिनका प्रमाण अन्य माननीय ग्रन्थों में नहीं मिलता है। इसप्रकार इन दोनों कल्पित श्लोकों को उद्धृत करके 'तुलसीमाला सदैव धारण करना निषिद्ध है। ऐसा कहा गया है जो सर्वदा और सर्वथा अनुचित है क्योंकि प्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थों में कहीं भी ऐसा दृष्टिगोचर नहीं। इसके अतिरिक्त 'तुलसी माला रहित मनुष्य को मिथ्या भाषण करना चाहिये।' ऐसी विधि भी किसी ग्रंथ से नहीं सुनी जाती। कहने का तात्पर्य यह है कि झूठ बोलने के लिये तो किसी भी ग्रन्थ ने किसीके लिये भी नहीं कहा। फिर तुलसी माला धारण करने वालों की तो बात ही क्या है। उनकी चर्चा ही कैसी ?

येतु वर्ण वहिर्भूतास्तेषां कीदृग्विधिर्मता ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि वदत्वं कृपयाप्रभो ॥ ४१

जो वर्ण से वहिर्भूत हैं उनकी विधि किस प्रकार की है। हे प्रभो ! मैं उसे इस समय सुनना चाहता हूँ। आप कृपा करके कहें

इति विहगेश्वर प्रश्नोपरि। इस प्रकार श्रीगरुड़ जी के प्रश्न करने पर श्रीविष्णु भगवान जी बोले।

चक्रादिधारणं तेषामपि तुल्यं खगेश्वर ।
मन्त्रे तु नाधिकारः स्याद् वैदिके तान्त्रिकेपिवा ॥
मन्नाममात्रं दातव्यं मन्त्रो वा वैपरीत्यतः ।
तेषां कण्ठेतु वध्नीयात्तुलसी काष्ठ मालिकाम् ॥
मन्त्रप्रतिष्ठिता मालातैर्नधार्या कदाचन ।
अमंत्रपूतामालैव धार्या कण्ठे सदैव तैः ॥४४

इति विहगेश्वरसंहिता वचनमुपन्यस्य कण्ठ लग्न मालाद्विजातीनां निषिद्धा (इति दर्शितं तन्न) प्रामाणिक निबन्धेषु तद्वचनानामदर्शनेन तादृश निषेधस्या प्रामाणिकत्वात् । कण्ठ लग्न मालायाः शूद्रपरत्वस्वीकारैः शूद्रस्य द्विजातेराधिक्यापत्तेश्च तथाहि ।

मालाद्विविधा एकाकण्ठ लग्ना अपरा-नाभि पर्यन्ता कण्ठलग्ना यथा'हरिभक्तिविलासे' 'गोपालभट्टेन', 'एकादशीतत्वे', रघुनन्दन भट्टाचार्येण, 'जयसिंह कल्पद्रुमे' जयसिंह देवेन

चोदाहृतं नारदीय वचनम् ।
ये कण्ठलग्नतुलसी नलिनाक्ष माला ।
ये वा ललाट फलकेलसदूर्ध्व पुण्ड्राः ।
ये वाहुमूल परिचिह्नित शङ्ख चक्राः ।
ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥
नाभि पर्यन्ता यथा पाद्मे ।

कण्ठादि नाभि पर्यन्तान्तुलसीं यो वहेन्नरः ।
कुल कोटिं समुद्धृत्य विष्णु लोके महीपते ॥

इति अयं भावः । ये कण्ठ लग्न मालास्ते शीघ्रं भुवनं पवित्रयन्ति यश्चनाभिर्य्यन्त मालान्धारयति । स स्ववंश मात्रमुद्धारयतीति वहुशोवलोकितेष्वेषु निबन्धेषु तुलसी मालिका नित्य धारण निषेधो नोपलब्ध इति बोध्यम् ॥

हे गरुड़ ! उनकी भी चक्रादि धारण विधि समान ही है। किन्तु उन्हे वैदिक व तान्त्रिक युक्त मन्त्र लेने का अधिकार नहीं ॥ ४२ ॥ उनको केवल मेरा नाम देना चाहिये। अथवा अक्षर का त्रिप-

र्षय करके मंत्र दिया जा सकता है। उनके गले में तुलसी की माला बांधना चाहिये ॥ ४३ ॥ उनको मंत्र प्रतिष्ठित माला कभी न पहिनना चाहिये। उनको सदा कण्ठ में अमंत्रित माला ही पहिनना चाहिये ॥ ४४ ॥

माला दो प्रकार से धारण करना कहा गया है। एक कण्ठ से लगी हुई। दूसरी कण्ठ से नाभि तक लटकती हुई। कण्ठ लग्ना माला के विषय में नारद पुराण के वाक्य हैं जिनको हरिभक्तिविलास में श्रीगोपालभट्ट ने एकादशी निर्णय में रघुनंदन भट्टाचार्य ने जयसिंह कल्पद्रुम में जयसिंहदेव ने अपनी २ कृतियों में उदाहरण स्वरूप उद्धृत किये हैं। जैसे जो पुरुष कण्ठमें कमल बीज व तुलसी माला धारण करते हैं और जो ललाट में ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाते हैं। भुजाओं में (स्कन्धों पर) शङ्ख चक्रादि वैष्णव चिह्नों के चिह्न हैं वे वैष्णव संसार को शीघ्र पवित्र करते हैं। इसी तरह नाभि पर्यन्त माला पहिने जाने के वाक्य पद्मपुराण में हैं। जैसे—जो कंठसे लेकर नाभि पर्यन्त तुलसी माला धारण करते हैं वे अपने कोटि कुलों का उद्धार कर स्वयं विष्णुपुर में जाते हैं। उक्त दोनों उदाहरणों से यह तात्पर्य निकलता है कि कंठ लग्न माला धारण करने वाले जो मनुष्य हैं वे संसार को शीघ्र पवित्र करते हैं स्वयं की व अपने कुलों की तो बात ही क्या है। और जो नाभि तक माला पहिनने वाले हैं वे केवल अपने वंशमात्र का उद्धार कर स्वयं विष्णुलोक के अधिकारी होतेहैं।

निबंध ग्रंथ बहुत से देखे जाने पर भी स्वामीजी का कहना

है कि कहीं भी तुलसी माला नित्य धारण करनेका निषेध नहीं मिला। अतः सर्वदा एक क्षण को भी विलग न करके तुलसी माला धारण करना मुख्य कर्तब्य हुआ। और इसके विरुद्ध वचन काल्पनिक अर्थात् अप्रमाणिक है निबन्धास्तु। श्रीस्वामीजी कहते हैं कि हम ऊपर कह आये हैं कि बहुत से निबन्ध ग्रंथ देखे गये हैं। तो यह स्वाभाविक है कि वे निबन्ध ग्रंथ कौन से हैं। जो देखे जा चुके हैं। उनकी कुछ ग्रंथों की नामावली इस शंका के निवारणार्थ हम यहाँ देते हैं कि ये निबन्ध ग्रंथ हैं-

१-मनुस्मृतिः २-हारीतस्मृतिः ३-विष्णुस्मृतिः ४-गौतमस्मृतिः ५-शङ्खस्मृतिः ६-अरुणस्मृतिः ७-दक्षस्मृतिः ८-वशिष्ठस्मृतिः ९-ब्यासस्मृतिः १०-काश्यपस्मृतिः ११-देवलस्मृतिः २१-उशनसःस्मृतिः १३-याज्ञवल्क्यस्मृतिः १४-आचारादर्शः १५-आचारप्रदीपः १६-आचार मयूखः १७-प्रायश्चित्त मयूखः १८-धर्म्म मयूखः १९-दानमयूखः २०-शान्ति मयूखः २१-प्रायश्चित प्रदीपः २२-प्रायश्चित-विवेकः २३-प्रायश्चित शतद्वयी २४-शुद्धि विवेकः २५-स्मृति समुच्चयः २६-शुद्धितत्वम् २७-आह्निक निबंधः २८-अधिकार निर्णयः २९-भट्टोजि दीक्षितकृततिथिनिर्णयः ३०-अनन्तदेव कृततिथि निर्णयः ३१-निर्णयामृतम् ३२ धर्मसारः ३३-स्मृतिचंद्रिका ३४-स्मृति कौस्तुभः ३५-स्मृति सुधाकरः ३६ व्रतार्कः ३७-संस्कार कौस्तुभः ३८-अनूपविलासः ३९-सङ्कल्पकौमुदी ४० आह्निक चंद्रिका ४१ दानोद्द्योतः ४२-कालादर्शः ४३-एकादशी मीमांसा ४४-कालनिर्णयः ४५-दान

विवेकः ४६–ब्राह्मण सर्वस्वम् ४७–कालमाधवः ४८–कृत्यरत्नावली ४९–दानहारावली ५०–शान्तिचिन्तामणिः ५१–पुरुषार्थचिन्तामणीः ५२जयसिंह कल्पद्रुमः ५३–जगत्प्रेमोदयः ५४–मदन प्रदीपः ५५–शौनक कारिका ५६–दिनकरोद्द्योतः ५७–सरोजसुन्दरः ५८–मर्यादासिन्धुः ५९–सर्वसंग्रहः ६०–माधवकारिका ६१–विधान पारिजातः ६२–हरिभक्ति भास्करः ६३–हरिभक्तिविलासः ६४–एकादशीतत्वम् ६५–रामार्चनचन्द्रिका ॥

अथ तुलसीवन पूजाविधिः

प्राग्दत्त्वार्घ्यं ततोऽभ्यर्च्य गंध पुष्पाक्षतादिना ।
स्तुत्वा भगवतीं ताञ्च प्रणमेत्प्रार्थ्य दण्डवत् ॥

श्री स्वामीजी पूर्व प्रसङ्ग में श्रीतुलसी काष्ठ निर्मित माला को क्यों धारण करना चाहिये ? व किस विधि से धारण करना चाहिये । और इसके धारण करने से क्या लाभ है ? इत्यादि अनेकों प्रमाणों द्वारा जो उनके कहे हुये उपरोक्त ग्रन्थ नामावली से लिये गये स्मृति पुराणों आदि के वाक्य उद्धृत कर बतला ही चुके हैं। जिनसे अब बिलकुल स्पष्ट है कि तुलसी धारण आवश्यक ही नहीं अनिवार्य्य है । अब आप तुलसी पूजन विधि बतलाते हुए कहते हैं कि तुलसी पूजन में सर्वप्रथम तुलसीजी को अर्घ्य देना चाहिए। अनन्तर गंध पुष्प अक्षतादि से पूजन करना चाहिये । इसके पश्चात् स्तुति प्रार्थना कर दण्डवत् प्रणाम करना चाहिए ।।४५।।

तत्रार्घ मन्त्रः वैष्णवामृते व्यासः।

उपरोक्तानुसार श्री स्वामीजी ने तुलसी पूजन विधि में सर्व प्रथम अर्घ्य दान देना कहा है। अतः अर्घ दान के लिये आप अर्घ मन्त्र जिससे अर्घ दिया जाना चाहिये बतलाते हैं। इस मन्त्र को श्रीव्यासजी ने वैष्णवामृत नामक ग्रन्थ में कहा है।

श्रियः श्रिये श्रिया वासे नित्यं श्रीधर सत्कृते।
भक्त्या दत्तं मया देवि गृहाणार्घ्यं नमोस्तुते ।।४६

हे लक्ष्मीप्रिये ? हे लक्ष्मीवासे ! तुम्हारा भगवान ने सदैव सत्कार किया है। मैं भक्ति से आपको अर्घ दान करता हूँ आपके लिये नमस्कार है। मेरा दिया हुआ अर्घ आप ग्रहण कीजिए ।।४६।।

अर्घ के पश्चात् पूजन कहा है अतः पूजामन्त्र निम्नानुसार है

पूजा मन्त्रः

निर्म्मिता त्वं पुरादेवैरर्चिता त्वं सुरासुरैः।
तुलसी हर मे पापं पूजां गृहाण नमोस्तुते ।।४७

आप प्रथम निर्मित हैं। आपकी पूजा सुरासुर करते हैं। हे तुलसी ! मेरे पापों को नष्ट कर दो। आपको नमस्कार है आप मेरी अर्पण की हुई पूजा को स्वीकार कीजिए ।।४७।।

स्तुतिश्च। अर्घ पूजनान्तर स्तुति का विधान है। अतः स्तुति के लिए यह स्तुति कही गई है।

मनः प्रसाद जननी सुख सौभाग्यवर्द्धिनी।
आधि व्याधि हरी नित्यं तुलसी त्वां नमोस्तुते।

हे देवि! आप मन को प्रसन्न करने वाली सुख सौभाग्य को बढ़ाने वाली और मन एवं शरीर की पीड़ा दूर करने वाली हो। हे तुलसी जी आपको हम करबद्ध हो नमस्कार करते हैं ॥४८॥

प्रार्थना। अनन्तर प्रार्थना का विधान है अतः प्रार्थना कही जाती है।

श्रियं देहि यशो देहि कीर्तिमायुस्तथा सुखम्।
बलं पुष्टिं तथा धर्मं तुलसी त्वं प्रयच्छमे ॥ ४६

हे तुलसी! आप हमे श्री दें यश दें तथा कीर्ति आयुष्य सुख बल पुष्टि और धर्म प्रदान करें। मैं आपको नमस्कार करता हूँ

प्रणामवाक्यमावन्ती खण्डे। अनंतर प्रणाम करना चाहिए। इसके लिये प्रणाम करने के वाक्य आवंतीखंडमें लिखे हैं। जो नीचे दिये जाते हैं।

प्रणाम

या दृष्टानिखिलाघसंघ,
शमनी स्पृष्टा वपुः पावनी।
रोगाणामभिवन्दिता,
निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी॥
प्रत्या शक्ति विधायिनी,
भगवतः कृष्णस्य संरोपिता।
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्ति,
फलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥५१

[आवंतीखण्डे]

जो समस्त प्रकार के पापों के समूहों को नष्ट कर शरीर को पवित्र करने वाली रोगों को शान्त करने वाली सर्ववंदिता हैं और अपने एक दल के प्रभाव से यमराज को भी भय देने वाली हैं ॥५०॥ जिसके आरोपन करने से भगवान् श्रीकृष्ण का सामीप्य प्राप्त होता है। जिनको भगवत् चरणों में अर्पण करने से मोक्ष प्राप्त होता है। उन श्री तुलसीजी को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ५१ ॥

अथ तुलसीपूजामाहात्म्यंस्कान्दे

इस प्रकार श्री तुलसीजी का पूजन विधान कह कर अब श्री-स्वामीजी तुलसी पूजा माहात्म्य कहते हैं जो स्कन्द पुराण में कहा गया है।

प्रयाग स्नान निरतेकाश्यांप्राण विमोक्षणे।
यत्फलं विहितं वेदैस्तुलसी पूजनेन तत् ॥५२

[स्कन्दपुराण]

वेद शास्त्रों ने जो फल प्रयागराज में स्नान करने व काशी में प्राण त्याग करने पर कहा है। वही फल तुलसी पूजन से प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां विशेषतः।
नारीणां पुरुषाणां च पूजितेष्टं ददातिहि ॥५३
तुलसी रोपिता सिक्ता दृष्टा स्पृष्टा च पावयेत्।
आराधिता प्रयत्नेन सर्व्वकामफलप्रदा ॥५४
प्रदक्षिणं भ्रमित्वाये नमस्कुर्वन्ति नित्यशः।
न तेषां दुरितं किञ्चिदक्षीणमवशिष्यते ॥५५

[अगस्तसंहिता]

तुलसीजी पूजा करने से विशेष कर चारों वर्णों वा चारों आश्रमों के स्त्री पुरुषों को मनोवांछित फल देती हैं ।।५३।। तुलसीजी के लगाने सींचने, दर्शन करने, स्पर्शादि से प्राणी पवित्र होते हैं ।। इनकी आराधना करने से यह सर्व सिद्धि को देने वाली हैं ।।५४।। जो मनुष्य इनकी परिक्रमा करके इन्हे मस्तक टेक कर नमस्कार करते हैं उनके कोई भी पाप नष्ट होने को शेष नहीं रहते हैं ।।५५।।

बृहन्नारदीये । बृहन्नारद में लिखा है ।

पूज्य मानातु तुलसी यस्य वेश्मनि तिष्ठति ।
तस्य सर्वाणि श्रेयांसि वर्द्धन्तेऽहरहर्द्धिजाः ।।५६

जिसके गृह में तुलसी होती हैं और उसकी नित्य पूजा होती है । उसके सर्व कल्याण (सौभाग्य, ऐश्वर्य, पुण्यादि) दिनों दिन बढ़ते ही जाते हैं ।।५६।।

पाद्मे । पद्मपुराण में कहा गया है ।

पक्षे २ तु संप्राप्ते द्वादश्यां वैश्यसत्तम ।
ब्रह्मा दयोऽपि कुर्वन्ति तुलसीवनपूजनम् ।।५७

(पद्मपुराण)

हे वैश्य श्रेष्ठ । द्वादशी के दिन प्रत्येक पक्ष में ब्रह्मादिक देवता भी तुलसीवन की पूजा किया करते हैं श्रीतुलसी स्तुति महिमा । अब

तुलसी स्तुति से क्या फल होता हैं। उसकी महिमा यानी माहात्म्य बतलाते हैं।

श्रीतुलसी स्तुति माहात्म्यम्

अनन्य मनसा नित्यं तुलसीं स्तौति योनरः।
पितृ देवमनुष्याणां प्रियो भवति सर्वदा ॥

जो मनुष्य सदैव एकाग्र चित्त होकर तुलसीजी की स्तुति करता है वह देवता पितृ मनुष्यों का सदैव पिय होता है ॥

तुलसी बन माहात्म्य स्कान्दे

रतिं वध्नाति नान्यत्र तुलसी काननं बिना।
देव देवो जगत्स्वामी कलिकाले विशेषतः ॥५८
न धात्री सफलायत्र न विष्णुस्तुलसीवनम्।
तन्म्लेच्छ सदृशं स्थानं यत्र नायान्ति वैष्णवाः।५९
केशवार्थे कलौ ये तु रोपयन्तीह भूतले।
किं करिष्यत्य सन्तुष्टो यमोऽपि सह किङ्करैः।६०
तुलस्यारोपणं कार्यं श्रवणेन विशेषतः।
अपराध सहस्राणि क्षमते पुरुषोत्तमः ॥६१
घटैर्यत्र घटीभिश्च सिञ्चितं तुलसीबनम्।

जलधाराभि र्विप्रेन्द्र प्रीणितं भुवनत्रयम् ॥ ६२
तुलसीगन्धमादाय यत्र गच्छति मारुतः ।
दिशोदश च पूताः स्युर्भू तग्रामश्चतुर्विधः ॥ ६३
तुलसी काननोद्भूता छाया यत्र भवेद् द्विज ।
तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितृणां तृप्तिहेतवे ॥ ६४
तुलसी वीज निकरः पतते यत्र नारद ।
पिण्डदानं कृतन्तत्र पितृणां दत्तमक्षयम् ॥ ६५
दृष्टा स्पृष्टा तथा ध्याता कीर्त्तितानमिताश्रुता ।
रोपिता सेवितानित्यं पूजिता तुलसी शुभा ॥ ६६
नवधा तुलसीं नित्यं ये यजन्ति दिने दिने ।
युग कोटि सहस्राणि ते वसन्ति हरेर्गृहे ॥ ६७
रोपिता तुलसी यावत्कुरुते मूल विस्तरम् ।
तावत्कोटि सहस्रन्तु तनोति सुकृतं कलौ ॥ ६८
यावच्छाखा प्रशाखाभि र्वीज पुष्पैः फलै र्मुने ।
रोपिता तुलसी पुम्भिर्वर्द्धते वसुधा तले ॥ ६९
कुले तेषान्तु ये जाता ये भविष्यन्ति येमृताः ।

आकल्पं युग साहस्त्रन्तेषां वासो हरे गृहे ॥ ७०
तुलसीं ये विचिन्वन्ति धन्यास्तत्कर पल्लवाः ।
केशवार्थे कलौयेच रोपयन्तीह भूतले ॥ ७१

(स्कन्दपुराण)

देवों के देव जगत स्वामी भगवान विशेष कर कलिकाल में तुलसी वनके अतिरिक्त अन्यत्र प्रेम नहीं मानते हैं ॥५८॥ जहां फल सहिता धात्री नहीं है, न विष्णु भगवान की मूर्ति है, न तुलसीवन है और न जहां वैष्णव आता है, वह स्थान म्लेच्छ के समान है ॥५६ जो पृथ्वी पर भगवान के लिये कलियुग में तुलसी वृक्ष लगाते हैं, यमराज अपने सेवकों युक्त उनका क्या करेंगे ? ॥६०॥ जो मनुष्य तुलसी वृक्ष लगाते हैं और उनका महात्म्य सुनते हैं उनके हजारों अपराधों को भागवान क्षमा करते हैं ॥६१॥ घड़ों में जल लेले कर जहां तुलसीवन सींचा जाता है वहां उन जल धाराओं से हे विप्र श्रेष्ठ ! तीनों लोक प्रसन्न होते हैं ॥६२॥ श्रीतुलसी जी की सुगंध लेकर जहां पवन वहता है वहां दशोदिशायें व चारो प्रकार के प्राणी पवित्र होते हैं हे द्विज ! जहां तुलसी वन की छाया हो, वहां श्राद्ध करने से पितृ देवताओं की तृप्ति होती है ॥६४॥ हे नारद ! जहां तुलसी बीज गिरते हैं वहां पिण्डदान करने से पितृ देवताओं को दिया अक्षय फल होता है ॥६५॥ दर्शन, स्पर्सन, ध्यान, कीर्तन नमन श्रवण आरोपन सेवन तथा नित्य पूजन इस प्रकार नौ प्रकार

से जो प्राणी प्रतिदिन तुलसीजी का सेवन करते हैं। वे हजार करोड़ युग भगवान के मन्दिर में वास करते हैं ॥६६–६७॥ कलियुग में लगाई गई तुलसीजी की जड़ जितनी फैलती है उतनी ही करोड़ हजार वर्ष उनको शुभकर्म करने का फल देती हैं ॥६८॥

तुलसीजी में जितनी ही शाखा प्रशाखा बीज पुष्प फल बढ़ जाते हैं उन आरोपन करने वाले मनुष्यों के भूत भविष्य वर्तमान वंसज उतने ही सहस्त्र कल्प तक विष्णु मन्दिर में वास करते हैं॥ ६९-७०॥ जो जन अपने हाथों से तुलसीदल उतारते हैं वे मनुष्य धन्य हैं। साथ ही कलियुग में भगवान के निमित्त पृथ्वी पर तुलसी जी को लगाने वाले मनुष्यों को भी धन्य है ॥७१॥

पाद्मे । पद्मपुराण में कहा गया है।

न पश्यन्ति यमं वैश्य तुलसीवनरोपणात् ।
सर्वं पापहरं सर्वकामदं तुलसीवनम् ॥ ७२
तुलसी काननं वैश्य गृहे यस्मिंस्तु तिष्ठति ।
तद्गृहं तीर्थभूतं हि नो यान्ति यमकिङ्कराः ॥७३
तावद्वर्ष सहस्त्राणि यावद्बीजदलानि च ।
वसन्ति देव लोकेतु तुलसीं रोपयन्ति ये ॥ ७४
तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः ।

प्रयान्ति गरुड़ारुढास्तत्पदं चक्रपाणिनः ।।७५

आम्रवृक्ष सहस्त्रेण पिप्पलानांशतेनच ।
यत्फलं हि तदेकेन तुलसी विटपेनतु ।। ७६

विष्णु पूजन संयुक्त स्तुलसींयस्तु रोपयेत् ।
युगायुत दशैकं स रोपको रमते दिवि ।। ७७

पुष्करादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
वासुदेवादयो देवाः बसन्ति तुलसीदले ।। ७८

नावज्ञाजातु कार्यास्यावृक्षभावान्मनीषिभिः ।
यथाहि वासुदेवस्य वैकुण्ठे भोग विग्रहे ।।७६

शालग्राम शिला रूपं स्थावरं भुवि दृश्यते ।
यथा लक्ष्म्यैक्यमापन्नातुलसी भोग विग्रहा ।।८०

अपरं स्थावरं रूपं भुवि लोक हितायवै ।

(पद्मपुराण)

हे वैश्य ! तुलसीवन लगाने से मनुष्य को यमराज के दर्शन नहीं होते क्योंकि तुलसीबन सब प्रकार के पापों को नष्ट करने वाले और सर्व मनोर्थ दाता हैं ।।७२।। हे वैश्य! जिस घर में तुलसी का बगीचा है। वह गृह तीर्थ रूप है। वहां यमदूतों की पहुंच नहीं है ।।

जो मनुष्य तुलसी लगाते हैं तो उन वृक्षों में जितने बीज फल लगते हैं उससे लगाने वाले उतने ही हजारवर्ष विष्णुलोक में वास पाते हैं। तुलसी वृक्ष की सुगंधि सूघंकर (लेकर) पितृ देवता संतुष्ट होकर गरुड़ पर चढ़कर विष्णुलोक जाते हैं ।।७५।। हजार आम व सैकड़ों पीपल के वृक्ष लगाने से जो फल मिलता है। वही फल एक तुलसी वृक्ष के लगाने से प्राप्त होता है ।।७६।। जो विष्णु पूजक तुलसी लगाता है वह अयुत युग तक स्वर्ग वास करता है ।।७७।। तुलसीदल में पुष्करादि तीर्थ गङ्गादि नदी व वासुदेवादिक देवता वास करते हैं वृक्ष समझकर तुलसीजी का कभी भी अपमान न करना चाहिये।

अगस्त्य संहितायाम्। अगस्त्य संहिता में लिखा है।

विष्णोस्त्रैलोक्य नाथस्य रामस्य जनकात्मजा।
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलोकैकपावनी ॥ ८१
तुलसी वाटिका यत्र पुष्पान्तर शतावृता।
शोभते राघवस्तत्र सीतया सहितः स्वयम् ॥८२
तुलसी विपिनस्यापि समन्तात्पावनं स्थलम्।
क्रोश मात्रं भवत्येव गङ्गायास्तु यथा पयः ॥ ८३
तुलसीसन्निधौप्राणान् ये त्यजन्ति मुनीश्वर।
न तेषां नरकक्लेशः प्रयान्ति परमम्पदम् ॥८४

अनन्य दर्शनाः प्रातर्ये पश्यन्ति तपोधन ।
अहोरात्र कृतं पापं तत्क्षणात्प्रहरन्ति ते ॥ ८५

(अगस्त्यसंहिता)

जैसी त्रैलोक्यनाथ श्रीरामचन्द्र जी की श्रीजनक पुत्री सीता जी प्रिया हैं । वैसी ही तीनो लोकों को पवित्र करने वाली तुलसीजी उनकी प्रिया हैं ॥८१॥ जहां हजारों पुष्पों के मध्य तुलसी वाटिका है वहां श्रीसीताजी सहित श्रीराघवजी स्वयं सुशोभित रहते हैं ॥८२॥ तुलसीवन के चारों ओर एक कोस तक का स्थल गङ्गाजी के जल के समान पवित्र रहता है ॥८३॥

हे मुनीश्वर ! जो प्राणी तुलसीजी के निकट प्राण त्याग करते हैं उनको नरकों का दुःख नहीं उठाना पड़ता है वे परमपद को प्राप्त होते हैं ॥८४॥ हे तपोधन । जो मनुष्य प्रातःकाल किसी को न देख कर प्रथम तुलसी के दर्शन करते हैं, उनके दिन रात के किये हुए पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं ॥८५॥

गारुड़े । गरुड़पुराण में कहा गया है ।

तुलसी कानने यस्तु मुहूर्त्तमपि विश्रमेत् ।
जन्मकोटिकृतात्पापान्मुच्यतेनात्र संशयः ॥८६
तृणानि तुलसीमूला द्यावन्त्यपहिनोति वै ।

तावती ब्रह्म हत्याहि छिनत्त्येव न संशयः ॥८७
तुलस्यां सिञ्चयेद्यस्तु चुलुकोदक मात्रकम् ।
क्षीरोदशायिनासार्द्धं वसेदाचन्द्रतारकम् ॥ ८८
कराटका वरणं वापि वृत्तिं काष्ठैः करोति यः ।
तुलस्याः शृणु राजेन्द्र तस्य पुराय फलं महत् ।८६
यावद्दिनानि संतिष्ठेत्कराटका वरणं प्रभो ।
कुलत्रय युतस्तावत्तिष्ठेद् ब्रह्म पदे युगम् ॥ ६०
तुलसीतिचयोब्रूयात्त्रिकालं वन्दने यदि ।
नित्यंसगोसहस्त्रस्य फलमाप्नोति भूसुर ॥६१
तेन दत्तं हुतं जप्तं कृतं श्राद्धं गया शिरे ।
तपस्तप्तं स्वग श्रेष्ठ तुलसीयेन रोपिता ॥ ६२
शुक्लपक्षे यदाराजं स्तृतीयाबुध संयुता ।
श्रवणेन महाभाग तुलसी चातिपुरायदा ॥ ६३

(गरुड़पुराण)

जो प्राणी एक मुहूर्त मात्र ही तुलसीवन में विश्राम करता है वह अपने करोड़ जन्म के किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है इसमें संदेह नहीं है ।।८६।। जो तुलसी के समीप के जितने तृणों को दूर

करता है वह उतनी ही ब्रह्महत्याओं को निश्चय नष्ट करता है ॥८७॥ जो मनुष्य केवल चुल्लू मात्र जल तुलसी में सींचते हैं वह जब तक चन्द्र सूर्य हैं तब तक क्षीरशायी भगवान के साथ वास करते हैं ।॥८८ हे राजेन्द ! सुनो जो मनुष्य तुलसी के चारो तरफ कंटकों की बारी लगाता है उसको बहुत बड़े पुण्य का फल प्राप्त होता है ।॥८६॥ जितने दिनों वह बारी रहती है उतने युग वह अपने तीन पुरुषों सहित ब्रह्म लोक में रहता है ॥६०॥

जो मनुष्य अपने मुंह से त्रिकालबन्दना में तुलसी शब्द का उच्चारण करता है । हे ब्राह्मण ! उसे नित्य एक हजार गौदान का फल मिलता है ॥६१॥ हे खगेश्वर ! जिसने तुलसी वृक्ष लगाया है, उससे दान, हवन, जप, तप तथा गया तीर्थ स्थान में श्राद्ध करने का फल प्राप्त कर लिया है ॥६२॥ हे राजन ! जब शुक्लपक्ष में तीजतिथि बुधवार और श्रवण नक्षत्र तीनों युक्त होवे । उस दिन तुलसी पूजा का अति पुण्य फल होता है ॥६३॥

अथ तुलसी मृदः काष्ठस्य च माहात्म्यम् ।

श्रीतुलसी मृत्तिका व काष्ट (लकड़ी) का माहात्म्य ।

तुलसी मृत्तिका लिप्तो यदि प्राणान्परित्यजेत् ।
यमेन नेक्षितुं शक्तो युक्तः पापशतैरपि ॥ ६४
शिरसि क्रियते यैस्तु तुलसी मूल मृत्तिका ।

विघ्नानि तस्य नश्यन्ति सानुकूलाग्रहास्तथा।९५

तुलसी मृत्तिका यत्र काष्ठं पत्रञ्च वेश्मनि।
तिष्ठते मुनिशार्दूल निश्चलं वैष्णवं पदम्॥९६

जिसके शरीर में तुलसी मृत्तिका प्राण त्यागने समय लगीहो तो उसकी ओर यमराज देख तक नहीं सकते चाहे वह सैकड़ों पाप करने वाला क्यों न हो॥९४॥ जो अपने शरीर में तुलसी जड़ की मृत्तिका लगाता है उसके सब विघ्न नष्ट हो जाते हैं। और उस पर सब ग्रह सानुकूल रहते हैं॥९५॥ हे मुनि सार्दूल! जिस गृह में तुलसी मृत्तिका, लकड़ी व पत्र रहता है वह गृह निश्चय स्वर्ग के समान है॥९६॥

वृहन्नारदीये। वृहन्नारदीय के वाक्य हैं।

तुलसी मूल सम्भूता हरिभक्तपदोद्भवा।
गाङ्गोद्भवा च मृल्लेखानयत्यच्युत रूपताम्।९७

(वृहन्नारदीय)

तुलसी की मृत्तिका विष्णु भक्तों के चरणों की धूलि और गङ्गा की रेणुका की लगाई गई रेखा विष्णु रूप ही बना देती है रेखा ये विष्णु रूप ही हैं॥९७॥

विष्णु धर्म्मोत्तरे । विष्णु धर्म्मोत्तर के वचन हैं ॥

पत्रं पुष्पं फलं काष्ठंत्वक् शाखा पल्लवांकुरम् ।
तुलसी सम्भवं मूलं पावनं मृत्तिकाद्यपि ॥ ९८
होमं कुर्वन्ति ये विप्रास्तुलसीकाष्ठवह्निना ।
लवे लवे भवेत्पुण्यमग्निष्टोम शतोद्भवम् ॥ ९९
नैवेद्यं पचते यस्तु तुलसीकाष्ठवह्निना ।
मेरुतुल्यं भवेदन्नन्तद्दत्तं केशवायहि ॥ १००
शरीरं दह्यते येषां तुलसी काष्ठ वह्निना ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकात्कथञ्चन ॥ १०१
ग्रस्तो यदि महापापै रगम्या गमनादिकैः ।
मृतः शुध्यति दाहेन तुलसी काष्ठवह्निना ॥ १०२
तीर्थं यदि न सम्प्राप्तं स्मृतिर्वा कीर्तनं हरेः ।
तुलसी काष्ठ दग्धस्य मृतस्य न पुनर्भवः ॥ १०३
यद्येकं तुलसीकाष्ठं मध्ये काष्ठस्य यस्यहि ।
दाहकाले भवेन्मुक्तिः पापकोटियुतस्य च ॥ १०४

जन्म कोटि सहस्रैस्तु तोषितो यैर्जनार्दनः।
दह्यन्ते ते जना लोके तुलसी काष्ठवह्निना ।।१०५

(विष्णुधर्मोत्तर)

तुलसी का पत्र, पुष्प, फल, काष्ठ, छाल, शाखा अंकुर व मृत्तिका ये सब पवित्र हैं ।।९८।। जो ब्राह्मण तुलसी की लकड़ी से हवन करते हैं। उनको लव २ में सौ अग्निष्टोम का फल प्राप्त होता है ।।९९।। जो तुलसी की लकड़ी से भोग बनाकर विष्णु को अर्पण करता है वह अन्न मेरु तुल्य होता है ।।१००।। जिसका दाह तुलसी काष्ट से किया जाता है, वह किसी तरह वैकुण्ठ से फिर संसार में नहीं लौटता ।।१०१।। यदि मनुष्य अगम्यागमनादि महापापों से ग्रस्त हो तो तुलसी काष्ठ से दाह होने पर वह शुद्ध होकर ब्रह्मलोक का अधिकारी हो जाता है ।।१०२।। मरते समय यदि तीर्थ न मिले और भगवान का नाम भी अंतकाल में न लिया जा सके । किन्तु तुलसी काष्ठ से दाह होने पर मोक्ष हो जाता है ।।१०३।। यदि दाह समय अन्य काष्ठों के साथ एक भी क्यों न हो, मुक्त हो जाता है।। १०४।। जिन्होंने करोड़ जन्म तक भगवान की सेवाकी है वे ही प्राणी अन्त में तुलसी काष्ठ से दाह पाते हैं ।।१०५।।

अथ तुलसी पत्र धारणे माहात्म्यं स्कान्दे तुलसीदल धारण करने का माहात्म्य स्कन्दपुराण में वर्णित है।

यस्य नाभिस्थितं पत्रं मुखे शिरसिकर्णयोः ।
तुलसी सम्भवं नित्यं तीर्थैस्तस्यमखैश्चकिम् ।१०६

यः कश्चिद्वैष्णवो लोके मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी।
पुनाति सकलांल्लोकाञ्छिरसा तुलसींवहन्।१०७

(स्कन्दपुराण)

जिसकी नाभि, मुख, शिर तथा कर्णों में तुलसी पत्र है उसे तीर्थ यात्रा व यज्ञों से क्या करना ? कहने का तात्पर्य यह है कि जिसने तुलसी पत्र धारण किया वह तीर्थ करने व यज्ञ करने का फल प्राप्त ही कर चुका ।।१०६।। तुलसी मस्तक पर धारण किये हुए यदि कोई वैष्णव मिथ्याचारी व अनाश्रमी एवं धर्म रहित क्यों न हो पर वह सर्व लोकों को पवित्र करने वाला है ।।१०७।।

वृहन्नारदीये पुराणे । वृहन्नारदीय पुराण का कथन है।

कर्णेन धारयेद्यस्तु तुलसीं सततं नरः ।
तत्काष्ठं वापि राजेन्द्र तस्यनास्त्युपपातकम् ।१०८

तुलसी दल संमिश्रं यस्तोयं शिरसा वहेत् ।
सर्वतीर्थाभिषेकः स्यात्तेन प्राप्तं फलं ध्रुवम् ।१०९

तुलसीं प्राप्य यो नित्यं न करोति ममार्चनम् ।

तस्याहं प्रतिगृह्णामि नपूजांदशवार्षिकीम् ।११०

वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम् ।
न वर्ज्यं जाह्नवी तोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम् ।१११

तुलसी पत्र मादाय यः करोति ममार्चनम् ।
न पुनर्योनिमाप्नोति मुक्तिभागीभवेद्धि सः ।११२

ये मञ्जरिदलैर्युक्तं तुलसी सम्भवैः क्षितौ ।
कुर्वन्ति पूजनंविष्णोस्तेकृतार्थाः कलौयुगे ।११३

हे राजेन्द्र ! जो नर निरंतर अपने कानों में तुलसी व तुलसी काष्ठ धारण करता है उसे उपपातक नहीं होता है।।१०८।। जो तुलसी दल मिश्रित जलको अपने मस्तक पर धारण करता है उसको निश्चय सब तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है ।। १०९ ।। जो विना तुलसी के मेरी पूजा करता है उसकी १० वर्ष तक की पूजा मैं ग्रहण नहीं करता हूँ ।।११०।। भगवान को वासी जल और पुष्प वर्जित है किन्तु वासी गङ्गा जल व तुलसीदल नहीं वर्जित हैं ।।१११।। जो तुलसी पत्र लेकर मेरी पूजा करता है उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता है वह मुक्त हो जाता है।।११२।। जो तुलसीदल व मंजरी से भगवान का पूजन करता है वही कलियुग में कृतार्थ हैं ।।११३।।

विष्णु रहस्ये। विष्णु रहस्य में लिखा है।

कृष्णा वाप्यथवा कृष्णा तुलसी कृष्ण वल्लभा।

सितावाप्यथवा कृष्णा द्वादशीवल्लभाहरेः ।११४
तावद्‌गर्जन्ति रत्नानिकौस्तुभादीन्यहर्निशम् ।
यावन्न प्राप्यते कृष्णा तुलसी पत्र मञ्जरी ॥११५

(विष्णुरहस्य)

कृष्णा व अकृष्णा दोनों तुलसी कृष्ण भगवान की प्रिया हैं कृष्णपक्षी या शुक्ल पक्षी द्वादशी विष्णुभगवान को प्रिय हैं ॥११४॥ कौस्तुभ रत्न इत्यादि रात्रि दिन तब ही तक गर्जते हैं जब तक कृष्ण तुलसी के पत्र व मंजरी नहीं होती है ॥११५॥

नारदपुराणे । नारद पुराण में कहा है ।

तावद्गर्जन्ति पुष्पाणि मालत्यादीनि भूसुर ।
यावन्न प्राप्यते पुण्या तुलसी कृष्णवल्लभा ।११६

(नारदपुराण)

मालती इत्यादि फूलों का आतंक तभी तक रहता है जब तक पवित्र कृष्ण वल्लभा तुलसी की अनुपस्थिति होती है ॥११६॥

अगस्त्य संहितायाम् । अगस्त्य संहिता में कहा गया है ।

पूर्वं सुग्रन्तपः कृत्वा वरं वव्रे मनस्विनी ।
तुलसी सर्व पुष्पेभ्यः पत्रेभ्योवल्लभाततः ॥२१७

(अगस्त्यसंहिता)

तुलसी अपने पूर्व जन्म में अति कठिन तपस्या कर भगवान सेवापाकर सर्व पुष्पों से श्रेष्ठ भगवान की अति प्यारी हुई हैं ॥११७

पद्म पुराणे। पद्मपुराण में कहा गया है।

सत्त्वं प्रीति करं वाक्यं कोपस्तस्यास्तु तामसः।
भावद्वयं हरौ जातं यत्तद्वर्णद्वयं ह्यभूत् ॥११८
श्यामापि तुलसी विष्णो प्रियाः गौरी विशेषतः।
यथा लक्ष्मीः प्रिया विष्णोस्तुलसी चततोधिका ॥

(पद्मपुराण)

सत्त्व प्रसन्नता करने वाला वाक्य है। उसका कोप तमोगुण है। इन दोनों भावों से दोनों वर्णोंका जन्म हुआ है ॥११८॥ श्यामा तुलसी और गोरी (रामा) तुलसी भी प्रिया हैं। जैसी लक्ष्मी भगवान की प्रिया हैं वैसी ही व उससे अधिक भगवान की तुलसी-जी प्रियतमा हैं ॥ ११६ ॥

स्कान्दे। स्कन्द पुराण के वाक्य हैं—

यत्फलं सर्व पुष्पेषु सर्व पत्रेषु नारद ॥
तुलसो दल मात्रेण प्राप्यते केशवार्चने ॥१२०
वर्णाश्रमेतराणांच पूजायाञ्चैव साधनम् ।
अपेक्षितार्थदं नान्यज्जगत्यऽस्तितपोधन ॥१२१

(स्कन्दपुराण)

हे नारद ! सर्व पुष्पों एवं सर्व पत्रों के चढ़ाने से जो फल होता है वही फल एक तुलसीदल के चढ़ाने पर होता है ॥ १२० ॥ वर्णाश्रम और इतरों को भगवत् पूजन में तुलसीदल ही मुख्य साधन है। हे तपोधन ! तुलसीदल के अतिरिक्त इस संसार में मनोर्थ सिद्ध करने वाली और दूसरी वस्तु नहीं है ॥१२१॥

पाप हारित्वं पाद्मे । तुम पापोंको नष्ट करने वाली हो ऐसा पद्मपुराण में कहा गया है।

श्रीमत्तुलस्यार्च्यते सकृद्धरिम् ।
पत्रैस्सुगन्धै विमलैरखण्डितैः ॥
यस्तस्य पापं पटसंस्थितम् ।
प्रभुर्निरीक्ष्य स्वामृजते स्वयं यमः ॥१२३

(पद्मपुराण)

जो मनुष्य तुलसी के सुगंधित निर्मल अखंडित दलों से भगवत पूजन करते हैं उनके कपड़ों तक में बैठे हुए पापों का यमराज स्वयं निरीक्षण करके उन (पापों) को निचोड़ कर अलग करदेते हैं।

स्कान्दे । स्कन्द पुराण में लिखा है।

तुलसीदललक्षेण योऽर्च्चयेद् द्वारकाप्रियम् ।
जन्मायुतसहस्त्रस्य पापस्य कुरुते क्षयम् ।१२४

किं करिष्यति संरुष्टो यमोऽपि सह किङ्करैः ।
तुलसी दलेन देवेशः पूजितोयेन दुःखहा ॥१२५

(स्कन्दपुराण)

जो विष्णु को तुलसी के लक्षदल [लखूरा] चढ़ाता है उसके १० हजार जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१२४॥ उस पुरुष का यमराज अपने दूतों सहित कुपित होकर क्या विगाड़ सकते हैं जिसने पापहारी भगवान का तुलसीदल से पूजन किया है ॥१२५॥

अगस्त्य संहितायाञ्च । अगस्त्य संहितामें कहा गया है ।

न तस्य नरक क्लेशो योऽर्च्चयेत्तु लसीदलैः ।
पापिष्ठो वाप्यपापिष्ठः सत्यं सत्यं न संशयः ॥
तीर्थयात्रादिभिरहो कालक्षेपेण किं जनाः ।
येऽर्चयन्ति हरिं विष्णुं तुलसीदल कोमलैः ॥२७
पुष्पान्तरैरन्तरितं निर्मितं तुलसी दलैः ।
माल्यं मलयजालिप्तं दद्याच्छ्रीराम मूर्द्धनि।१२८
किं तस्य बहुभि र्यज्ञैः सम्पूर्ण वर दक्षिणैः ।
किं तीर्थसेवयादानैरुग्रेण तपसापिवा ॥१२६

पत्रं पुष्पं फलं चैव श्रीतुलस्या समर्पितम् ।
रामाय मुक्ति मार्गाय द्योतकं सर्वसिद्धिदम् ॥

[अगस्त्यसंहिता]

जो मनुष्य तुलसीदल से भगवत् पूजन करते हैं। उनके नर्क यातनायें नहीं भोगनी पड़ती हैं। वे पुरुष चाहे धर्मिष्ठ हो चाहे पापिष्ठ। इसमें न कोई संदेह है न कोई आश्चर्य। यह ध्रुव सत्य है॥१२६॥ तीर्थ यात्रा से कालक्षेप करना व्यर्थ है। जो लोग कोमल तुलसीदल से भगवान का पूजन करते हैं उनको पूजन से सब तीर्थ यज्ञादि का फल प्राप्त होता है॥१२७॥ जो पुष्प युक्त तुलसी माला व मलयागिरि चन्दन को भगवान श्रीरामजी पर अर्पण कर उनका पूजन करते हैं। उन लोगों के लिए दक्षिणा युक्त सम्पूर्ण यज्ञादि तीर्थ यात्रा व दानादि साथ ही उग्र तपस्या करने की क्या आवश्यकता है ? क्योंकि तुलसी पुष्प माला युक्त चन्दनादि अर्पण करने पर इन सबों से कहीं अधिकफल प्राप्त हो जाता है॥१२८।१२६॥ श्रीराम जी को अर्पण किये गये तुलसी के पत्र पुष्प फल अणमादिक सर्व सिद्धियों के अतिरिक्त मोक्ष दाता होते हैं॥१३०॥

गारुड़े। गरुड़ पुराण में कहा गया है।

तावद्भ्रमति संसारे विमूढः कलिवर्त्मनि ।
यावन्नाराधयेद्देवं तुलसीभिः प्रयत्नतः ॥१३१

[गरुड़पुराण]

मूर्ख अज्ञानी पुरुष इस कलिकाल में संसार मार्ग में तब तक भटकते हैं जब तक उन्होंने श्री भगवान का तुलसीदल से अच्छी तरह पूजन नहीं किया ॥१३१॥

तत्रैव श्रीभगवदुक्तौ । वैसा ही भगवान का स्वयं बचन है।

तुलसी पत्रमादाययः करोति ममार्चनम् ।
न पुनर्योनि मायाति मुक्ति भागी भवेन्नरः।१३२

जो पुरुष तुलसीजी से मेरा पूजन करता है वह फिर जन्म न लेकर मुक्ति का भागी होता है ॥१३२॥

अगस्त्य संहितायाम् । अगस्त्य संहिता में वर्णित है।

तुलसी पत्रमादाय योऽर्चयेद्राम मन्दिरे ।
स याति शाश्वतं ब्रह्म पुनरावृत्ति दुर्लभम् ।१३३
तुलसी कृष्णगौराभातयाभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
नरोयाति तनुं त्यक्त्वा वैष्णवीं शाश्वतीं गतिम्
योऽर्चयेद्धरिपादाब्जं तुलसी कोमलैर्दलैः ।
न तस्य पुनरावृत्ति र्ब्रह्म लोकात्कदाचन ।१३५

[अगस्त्यसंहिता]

तुलसी पत्र लेकर जो श्रीराममंदिर में पूजन करता है वह आवागमन रहित हो सदैव एक सा रहने वाले ब्रह्म को प्राप्त करता है ॥१३३॥ कृष्ण व गौरि तुलसी से भगवत् पूजन करने से मनुष्य शरीर त्याग कर शाश्वती वैष्णवी गति को प्राप्त करता है ॥१३४॥ जो मनुष्य कोमल तुलसीदलों से चरणार्विन्दों का पूजन करता है वह ब्रह्मलोक से लौटकर कदापि संसार में नहीं आता है ॥१३५॥

ब्राह्मे । ब्रह्मपुराण में कहा गया है।

तुलसीदल गन्धेन मालती कुसुमेन च ।
कपिला क्षीर दानेन सद्यस्तुष्यति केशवः ।१३६

[ब्रह्मपुराण]

कार्तिकादौफल विशेषस्तत्र ।

तुलसी दल चन्दन और मालती पुष्पों युक्त पूजन कपिला गौ तथा क्षीर दान से भगवान बहुत शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं ॥ १३६ ॥ ब्रह्मपुराण में इसका महत्व कार्तिक आदि महीनों में और विशेष कहा गया है ।

कार्तिकेगारुड़े । गरुड़पुराणमें कार्तिकमास माहात्ममें कहागया है।

गवामयुत दानेन यत्फलं लभते खग ।
तुलसी पत्रमेकन्तु तत्फलं कार्तिके स्मृतम् ।१३७

[गरुड़पुराण]

हे गरुड़ । दशहजार गौदान से जो फल मिलता है वह फल कार्तिकमास में एक तुलसीदल से प्राप्त होता है ।।१३७।।

अथ माघे स्कान्दे । स्कन्द पुराण के माघ मास माहात्म्य में लिखा गया है ।।

स्नात्वा महानदी तोये कोमलैस्तुलसी दलैः ।
योऽर्चयेन्माधवं माघे कुलानान्तारयेच्छतम् १३८

[स्कन्दपुराण]

गङ्गादि महानदी के जलमें स्नान कर जो प्राणी कोमलतलसी दल से माघ मास में भगवान का पूजन करता है वह अपने सैकड़ों पुरुषों का उद्धार करता है ।।१३८।।

वैसाखे पाद्मे । पद्मपुराण के वैसाख मास महात्म्यमें वर्णन किया गया है।

तुलसी गौर कृष्णाख्या तयाभ्यर्च्यमधुद्विषम् ।
विशेषेणतु वैशाखे नरो नारायणो भवेत् ।।१३६

[पद्मपुराण]

कृष्णा रामा तुलसी दलों से भगवान का विशेषकर वैशाख महीने में पूजन करने से मनुष्य भगवान के समान हो जाता है ।।१३६

स्कन्दे। स्कन्दपुराण में कहा है।

सम्पूज्य तुलसीं भक्त्या घनश्यामं जनार्दनम्।
चतुरोवार्षिकान्मासानश्वमेधायुतंलभेत्।१४०

[स्कन्दपुराण]

घनश्याम भगवान् की वार्षिक चार महीने पूजाको प्रेम पूर्वक तुलसीदल से पूजा करता है उसे १० हजार अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥१४०॥

वायुपुराणे। वायुपुराण के वचन हैं।

अस्नात्वा तुलसीं छित्वा यः पूजां कुरुते नरः।
सोऽपराधी भवेत्सत्यं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।१४१

(वायुपुराण)

विना स्नान किये जो तुलसी को छूता है या तोड़कर उससे भगवान की पूजा करता है। वह अपराधी होता है। उसका सबशुभ कर्म निष्फल हो जाता है ॥१४१॥

तत्रादौ मंत्रः स्कान्दे। प्रथम स्कन्द पुराण में तुलसी तोड़नेका मंत्र दिया गया है।

तुलस्यमृत जन्मासि सदात्वं केशवप्रिया।
केशवार्थेचिनोमित्वां वरदा भव शोभने ॥ १४२

त्वदङ्ग सम्भवैः पत्रैः पूजयामि यथा हरिम् ।
तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौमल विनाशनी ॥१४३

(स्कन्दपुराण)

हे तुलसी आप अमृत से उत्पन्न हो । सदा भगवान की प्रिया हो । भगवान के लिये मैं आप को उतारता हूँ । हे शोभने ! आप बरदात्री हो ॥१४२॥ आपको भगवान प्रिय समझकर मैं आप के अंग से उत्पन्न हुये पत्रों से जिस तरह मैं भगवान की पूजा करता हूँ । हे कलिकाल के पापों को नष्ट करदेने वाली, पवित्र अङ्ग वाली ! आप उसी प्रकार हमको भी भगवान प्रिय बनाओ ॥१४३॥

गारुड़े । गरुड़ पुराण में लिखा है ।

मोक्षैकहेतो धरणी प्रशस्ते,
विष्णोः समस्तस्य गुरोः प्रियेति ।
आराधनार्थं वर मञ्जरीकं,
लुनामिपत्रं तुलसि क्षमस्व ॥१४४॥
इत्युक्त्वा तुलसीं नत्वाक्षित्वादक्षिणपाणिना ।
पत्राणयेकैकशोन्यस्यत्ससपात्रे मञ्जरीरपि ॥१४५

(गरुड़पुराण)

हे देवि ! आप मोक्ष दाता हो । संसार प्रसिद्ध हो । सर्व गुरु

विष्णु भगवान की प्यारी हो। भगवान की पूजा के लिये मैं आपकी मंजरी व दल उतारता हूँ। आप मुझे क्षमा प्रदान करें ॥१४४॥ इस प्रकार प्रार्थना कर दाहिने हाथ से एक दो पत्र व मंजरी तोड़कर स्वच्छपात्र में रक्खें ॥१४५॥

तन्माहात्म्यं स्कन्दे। इसका माहात्म्य स्कन्द पुराण में वर्णितहै

मन्त्रेणानेन यः कुर्याद् गृहीत्वा तुलसीदलम्।
पूजनं वासुदेवस्य लक्षकोटि फलं लभेत् ॥१४६।
शालग्राम शिलार्च्चार्थं प्रत्यहं तुलसी क्षितौ।
तुलसीं ये विचिन्वन्ति धन्यास्ते करपल्लवाः १४७
संक्रान्त्यादौ निषिद्धोपि तुलस्यवचयः स्मृतः।
परैः श्रीविष्णुभक्तैस्तु द्वादश्यामेव नेष्यते ।१४८

(स्कन्दपुराण)

इस मंत्र से तुलसीदल उतार कर जो भगवान का उनसे पूजन करते हैं उन्हें लक्ष करोड़ गुणा फल प्राप्त होता ॥१४६॥ संसार में तुलसी वृक्षसे शालिग्राम सिला के पूजन के लिये जो तुलसीदल उतारते हैं उनके हाथों को धन्य है ॥१४७॥ संक्रान्त आदि निषिद्ध समय में भी तुलसी उतारने के स्मृतियों में वचन मिलते हैं। किन्तु पर वैष्णव लोग द्वादशी को ही निषृष्ट मानते हैं ॥१४८॥

अथ तुलस्य वचयनिषेधकालो विष्णुधर्मोत्तरे।

नच्छिन्द्यात्तु लसींविप्राद्वादश्यांवैष्णत्रक्वचित् ।१४८

हे विप्र ! वैष्णव कभी भी द्वादशी तिथि को तुलसी न तोड़े।

गारुड़े। गरुड़ पुराण में कहा गया है ॥ १४८ ॥

भानुवारं बिनादूर्वा तुलसींद्वादशीं विना।

जीवितस्य विनाशाय न विचिन्वीत्धर्मवित् ।१४६

(गरुड़पुराण)

रविवार को दूर्वा और द्वादशी तिथि को तुलसी न तोड़ना चाहिए। इसमे आयु क्षीण होती है। अतः धर्मज्ञ को उक्त तिथियों में दूर्वा व तुलसी न तोड़ना चाहिए ॥१४६॥

पाद्मे च। पद्म पुराण में कहा गया है ॥

द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्री पत्रञ्च कार्तिके।

लुनाति सनरोगच्छेन्निरयानति गर्हितान् ।१५०

देवार्थे तुलसी छेदो होमार्थे समिधां तथा।

इन्दुक्षये न दुष्येतगवार्थे तु तृणं यथा ॥१५१।

[पद्मपुराण]

द्वादशी को तुलसी पत्र और कार्तिक मासमें धात्री पत्र

[आवला का पत्र] जो मनुष्य तोड़ता है। वह नरकगामी होता है ॥
१५०॥ देवता के लिये तुलसी तोड़ना तथा होम के लिये समिधाये
तोड़ना ऐसे ही दूषित नहीं। जैसे हो अमावशको गौ के लिये घास
काटना दूषित नहीं है ॥१५१॥

सर्वेषां पत्राणां मध्ये तुलसीपत्रस्य श्रेष्ठत्वमाह ।

अब समस्त पत्रों में तुलसी पत्र की श्रेष्ठता कहते हैं।

नारसिंहे। नरसिंह पुराण के वाक्य हैं।

पत्राण्यपि सुपुण्यानि हरि प्रीति कराणि च ।
प्रवक्ष्यामि नृपश्रेष्ठ शृणुष्व गदतोमम् ॥१५२॥
अपामार्गं तु प्रथमं भृङ्गराजं ततः परम् ।
ततस्तमाल पत्रं च ततश्च शमिपत्रकम् ॥१५३
दूर्वापत्रं ततः श्रेष्ठ ततोपि कुशपत्रकम् ।
तस्मादामलकं श्रेष्ठं ततोविल्वस्य पत्रकम् ।१५४
विल्वपत्रादपि हरेस्तुलसो पत्रमुत्तमम् ॥

[नरसिंहपुराण]

हे नृप श्रेष्ठ ! भगवान को प्रसन्न करने वाले अति पवित्र पत्र
भी हम वर्णन करते हैं। तुम मुझसे सुनो ॥१५२॥ प्रथम अपामार्ग

[अंजाझारा] श्रेष्ठ है अनन्तर भृङ्गराज पत्र। फिर तमालपत्र। उससे शमी पत्र श्रेष्ठ है ॥१५३॥ उससे दूर्वापत्र, और उससे कुशपत्र श्रेष्ठ है। आमलक पत्र उससे भी और इससे भी श्रेष्ठ विल्व पत्र है॥ १५४॥ इन सब में श्रेष्ठ विल्व पत्र से भी पवित्र उत्तम तुलसी पत्र है।

अथ तुलस्यर्पण नित्यता पाद्मे। पूजन में तुलसी पत्र का होना अनिवार्य्य है। ऐसे पद्म पुराण के वाक्य हैं।

तुलसी न येषां हरिपूजनार्थं,
संपद्यते माधवपुण्यवासरे।
धिग्यौवनं जीवनमर्थ संततिं,
तेषां सुखं नेह च दृश्यतेपरे ॥१५५॥

(पद्मपुराण)

वैसाख महीने के पुण्य दिनों में जिनके भगवान के पूजन में तुलसी नहीं होती है। उनके यौवन, जीवन, संतान व धनको धिक्कार है। वे इस लोक में व परलोक में सुख नहीं प्राप्त कर पाते ॥१५५॥

गारुडे। गरुड़ पुराण का कथन है।

तुलसीं प्राप्ययोनित्यं न करोति ममार्चनम्।
तस्याहं प्रति गृह्णामि न पूजां शतवार्षिकीम्।१५६

(गरुड़ पुराण)

जो मनुष्य नित्य तुलसी रहित मेरा पूजन करते हैं। उनकी सौ वर्षों की की हुई पूजा को मैं नहीं ग्रहण करता हूँ। और वह पूजा इस प्रकार वृथा हो जाती है ॥१५६॥

वृहन्नारदीये। वृहन्नारद पुराण के वाक्य हैं।

यद्गृहेनास्ति तुलसी शालग्राम शिलार्चने।
श्मशान सदृशं विद्यान्तद् गृहं शुभवर्जिनम् १५७

(वृहन्नारदपुराण)

जिस घर में शालिग्राम सिला के पूजनार्थ तुलसी वृक्ष नहीं है वह घर श्मशान भूमि के समान शुभकर्म वर्जित है। जिस प्रकार मरघट पर किये शुभकर्म फलप्रद नहीं उसी प्रकार उपरोक्त गृह भी मरघटवत् है उसमें किये कोई शुभकर्म फलप्रद नहीं ॥१५७॥

वायु पुराणे। वायु पुराण में लिखा हुआ है।

तुलसी रहितां पूजां न ग्रह्णाति सदा हरिः।
काष्ठं वा स्पर्शयेतत्र नो चेत्तुनामतोयजेत् ।१५८
तुलसीदल मादाय योऽन्यन्देवं प्रपूजयेत्।
ब्रह्महासहि गोघ्नश्च स एव गुरु तल्पगः।१५६

(वायुपुराण)

भगवान सदैव तुलसी रहित पूजा को ग्रहण नहीं करते। अतः

तुलसीदल के अभाव में तुलसी काष्ठ अर्पण करना चाहिये। और यदि तुलसी काष्ठ भी उपलब्ध न हो सके तो तुलसी नाम से ही भगवान का पूजन करे ॥१५८॥ जो मनुष्य तुलसी से भगवान के अतिरिक्त दूसरे देवता की पूजा करता है उसको ब्रह्म हत्या, गौहत्या व गुरुदारागमन का पाप होता है ॥१५६॥

गारुड़े नैवेद्य प्रसंगे। गरुड़ पुराण के नैवेद्य प्रसंग में कहा गया है।

तुलसीदल संमिश्रं हरेर्यच्छेच्चयत्सदा ॥

सदैव भगवान को तुलसीदल युक्त भोगअर्पण करनाचाहिये।

अथ तुलसीदल भक्षण माहात्म्यं गारुड़े। गरुड़ पुराण में तुलसीदल भक्षण का माहात्म्य कहा गया है।

सितासितं यथा नीरं सर्व पाप क्षमावहम् ।
तथाच तुलसी पत्रं प्राशितं सर्व कामदम् ॥१६०
चान्द्रायण सहस्रस्य प्रयागानां शतस्य च ।
नतुल्यं जायते पुण्यं तुलसीपत्र भक्षणात् ॥१६१
कृत्वा पाप सहस्राणि पूर्वे वयसिमानवः ।
तुलसी भक्षणान्मुच्यंच्छुतमेतत्पुराहरेः ॥१६२

**श्रीमत्तुलस्याः पत्रस्य महात्म्यं यद्यपीदृशम् ।
तथापि वैष्णवैस्तन्न ग्राह्यं कृष्णार्पणं विना ॥**

(गरुड़पुराण)

जिस प्रकार गङ्गा जमुना का जल पवित्र व समस्त पापनाशक है वैसे ही भक्षण किया गया तुलसी पत्र सर्व काम देने वाला है ॥ १६२ ॥ तुलसी दल भक्षण करने से जो फल होता है उसकी बराबरी एक हजार चांद्रायण व्रत का फल और सौ वार प्रयाग स्नान करनेका फल भी नहीं कर सकता है ॥१६३॥ हे मुने ! जीवन की प्रथमावस्था में किये गये हजारों पापों का नाश तुलसीपत्र भक्षण से हो जाता है प्राचीन काल में मैंने ऐसा श्रीहरिमुख से सुना है ॥१६४॥ यद्यपि तुलसीदल का महात्म्य ऐसा है तो भी वैष्णवों को चाहिये कि भगवान को विना अर्पण किये उसे ग्रहण न करे ॥१६५ग

अथ तुलसी मूल मृत्तिका पुण्ड्र माहात्म्यम् ।

तुलसी जड़ की मृत्तिका का तिलक लगाने का माहात्म्य हे नारद ! जिसके ललाट में तुलसी मूल मृत्तिका का तिलक लगा हुआ दिखलाई देता है । उसका किया हुआ पाप उसे स्पर्श नहीं कर सकता है ॥ १६६ ॥

**तुलसी मृत्तिकापुण्ड्रं ललाटे यस्य दृश्यते ।
देहं न स्पृशते पापं क्रियमाणन्तु नारद ॥१३६**

गरुड़ पुराणे । गरुड़पुराण में कहा है ।

तुलसी मृत्तिकापुण्ड्र यः करोति दिने २ ।
तस्यावलोकनात्पापं याति वर्ष कृतं नृणाम् ॥

(गरुड़पुराण)

जो मनुष्य तुलसी मूल मृत्तिका का तिलक लगाता है उसके दर्शन मात्र से मनुष्यों के सौ वर्ष के किये हुये पाप नष्ट हो जाते हैं

श्रीमद्रामसखेन्द्रस्य पादपद्म प्रसादतः ।
बुध सम्मति युक् पूर्णस्तुलसी तत्त्वभास्करः ॥
सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यगाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्ताम् बन्देगुरु परम्पराम् ।१६६

श्रीमद् रामसखेन्द्रजी के चरण कमलों के प्रसाद से विद्वानों की सम्मति सहित यह तुलसी तत्व भास्कर पूर्ण हुआ ॥ १६८ ॥ मैं अपनी गुरु परंपरा को नमस्कार करता हूँ जिसके आदि में श्रीरामजी मध्य में श्रीरामानन्दाचार्य्यजी और अंत में हमारे गुरुदेव हैं ।

इति श्रीसीताराम कृपापात्र श्रीसीतारामीय परमहंस परिव्राजक हरिहरप्रसाद विरचित श्रीतुलसी तत्व भास्कर समाप्त ॥

पद्मपुराण में श्रीतुलसी माहात्म्य वर्णन किया गया है। श्री-शङ्करजी महाराज अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीस्वामिकार्तिकजी से कहरहे हैं—

हितार्थं सर्वलोकानां विष्णुनारोपिता पुरा।
तुलसीपत्र पुष्पं च सर्वधर्मप्रतिष्ठितम् ॥१॥
यथा विष्णोः प्रिया लक्ष्मी यथाहं प्रियएव च।
तथैव तुलसी देवी चतुर्थी नोपपद्यते ॥२॥
यथा गङ्गा पवित्राङ्गी सुरलोके विमोक्षदा।
यथा भागीरथी पुण्या तथेयं तुलसी शिवा ।३।
पूजने कीर्तने ध्याने रोपने धारणे कलौ।
तुलसी दहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च ॥४॥
साकथं तुलसी लोकैः पूज्यते वन्द्यते नहि।
दर्शनादेव यस्यास्तु दानं कोटिगवाम्भवेत् ।५।
धन्यास्ते मानवालोके यद्गृहे विद्यते कलौ।
शालग्राम शिलार्थं तु तुलसी प्रत्यहं क्षितौ ॥६।
रोपिता गोमतीतीरे स्वयं कृष्णेन पालिता।
जगद्धिताय तुलसी गोपीनां हित हेतवे ॥७॥

तुलसी ग्रहणं कृत्वा विमुक्तो याति पातकैः ।
अथवा मुनि शार्दूला ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥८॥
तुलसीपत्र गलितं यस्तोयं शिरसावहेत् ।
गङ्गा स्नानमवाप्नोति दशधेनु फलप्रदम् ॥६॥
यत्पापं यौवने वाल्ये कौमारे वृद्धिके कृतम् ।
तत्सर्वं विलयं याति तुलसीस्तवपाठतः ॥१०॥

हे पुत्र ! श्रीविष्णु भगवान ने जगके कल्याण के लिये पहले तुलसी को लगाया । इसीसे सब धर्मों में यह पत्र प्रतिष्ठित माना गया है ॥ १ ॥ जैसे विष्णु भगवान को लक्ष्मीजी प्रिय हैं और जैसे मैं प्रिय हूँ वैसे ही तीसरे तुलसीजी प्रिय हैं । चौथा कोई ऐसा प्रिय नहीं ॥ २ ॥ जिस प्रकार स्वयं गंगाजी पवित्र करने वाली और स्वर्ग में मोक्ष देने वाली हैं व जिस प्रकार भागीरथी इस मृत्युलोक में हैं उसी प्रकार तुलसीजी भी पवित्र करने वाली और सर्वकल्याण करने व मोक्ष देने वाली हैं ॥३॥

इस कलियुग में पूजन करने, कीर्तन करने व ध्यान करने तथा लगाने व पहिनने से तुलसी सब पापों को नष्ट करती है और अंत में मोक्ष देने वाली हैं ॥४॥ जिस तुलसी का दर्शन करने से करोड़ों गौदान का फल प्राप्त होता है इस लोक में इन तुलसी को कौन न पूजेगा व नमस्कार करेगा ॥५॥ कलियुग में जिन मनुष्यों

के घर शालग्रामजी के पूजन के लिये पृथ्वी पर तुलसी जी शोभित हैं वे मनुष्य धन्य हैं ।।६।। जगत हित व गोपियों की भलाई के लिये श्रीकृष्ण भगवान ने स्वयं श्रीतुलसीजी को गोमती के किनारे लगाया और उनकी सेवा की ।।७।। श्रीतुलसीजी को धारण करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । व हे मुनिश्रेष्ठ ! इससे ब्रह्म हत्या का पाप भी नष्ट हो जाता है ।।८।। तुलसी पत्र से गिरा हुआ जल जो माथे पर धारण करता है वह दस गोदान के बराबर गङ्गास्नान का फल प्राप्त करता है ।।९।। तुलसी स्तव के पाठ से चारो अवस्थाओं में किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं ।।१०।। इस प्रकार शंकरजी के वचन पद्मपुराण में सविस्तार वर्णित हैं ।

॥ श्रीमतेरामभद्रायनमः ॥

"तिलक तत्त्व भाष्कर"

नमामि सीतां जनक प्रसूतां-

नमामि रामं रघुवंश जातं।

नमामि श्रीमद्भरतादि वन्धू,

नमामि वातात्मज मुग्ररूपं ॥१॥

असितूण धनुर्बाणान् रघुनन्दन भूयते।

नत्वा वैष्णव तुष्ट्यर्थं कुर्वे तिलक भाष्करम् ॥२॥

श्रीजनकनंदिनी श्रीसीता जी श्रीरघुवंश में जन्म लेने वाले श्रीरामचन्द्रजी श्रीमान भरतादि भाइयों को व उग्ररूप पवननन्दन श्रीहनुमानजी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥ श्रीमहाराज रामचन्द्रजी के खड्ग तरकस धनुष और बाण को प्रणाम कर वैष्णव भक्तों के सन्तोषार्थ मैं तिलक तत्व भाष्कर का निर्माण करता हूँ ॥२॥

यजुर्वेदस्य हिरण्यकेशी शाखा यामूर्ध्वपुण्ड्र विधिः।

यजुर्वेद के हिरण्यकेशी शाखा में ऊर्ध्व पुण्ड्र की विधि वर्णित है ।

हरेः पदाकृति मात्मनि धारयति यः स परस्य प्रिभो भवति स पुण्यवान्मध्ये श्रियमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स मुक्ति भाग्भवतीति ।

जो मनुष्य हरि चरणाकृति तिलक मस्तक में धारण करता है वह भगवत प्रिय होता है । वही पुण्यवान है । तिलकके मध्य श्रीयुक्त ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाला पुरुष मोक्ष का अधिकारी होता है ।

हरिभक्तिविलासे (कार्तिकप्रसङ्गस्कान्दवचनम्

हरिभक्तिविलास के कार्तिक प्रसङ्ग में स्कन्दपुराण के वचनहैं

ऊर्ध्वपुण्ड्रो मृदाशुभ्रो ललाटे यस्य दृश्यते ।
चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ।

(स्कन्दपुराण)

जिसके मस्तक पर सुन्दर मृत्तिका का उर्ध्व पुण्ड्र दिखलाई देता है, वह चाण्डाल भी शुद्धात्मा होकर सनातन कुल की प्राप्ति करता है ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र इति पुंस्त्वमार्षम् ।

ऊर्ध्व पुण्ड्र यह पुलिङ्ग प्रयोग ऋषिप्रोक्त होने से शुद्ध है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रे स्थितालक्ष्मी रूर्ध्वपुण्ड्रे स्थितं यशः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रे स्थिता मूर्तिरूर्ध्वं पुण्ड्रे स्थितोहरिः

ऊर्ध्व पुण्ड्र में लक्ष्मी, यश, भगवत रूप और स्वयं हरि भगवान स्थित है॥ ४॥

तत्रैव पद्मपुराणे। पद्मपुराण में भी कहा गया है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा सौम्यं ललाटे यस्य दृश्यते।
स चण्डालोऽपि शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः॥५

जिस मनुष्य के मस्तक में मृत्तिका का सुन्दर ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक लगा दिखाई देता है। वह चाण्डाल होते हुए भी शुद्धात्मा है और पूजने के योग्य है। इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है।

तत्रैवोत्तर खण्डे शिवोमासम्वादे। वहीं उत्तरखण्ड में शिव उमा सम्वाद कहा गया है।

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्येतु विशाले सुमनोहरे।
लक्ष्म्या सार्द्धं समासीनो देवदेवो जनार्दनः॥६
तस्माद्यस्य शरीरेतु ऊर्ध्व पुण्ड्रं धृतं भवेत्।

तस्य देहो भगवतो विमलं मन्दिरं स्मृतम् ॥७॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो विप्रः सूर्य्यलोकेषु पूजितः।
विमानवरमारुह्य यातिविष्णोः परम्पदम् ॥८॥
ऊर्ध्वपुण्ड्र धरं विप्रं दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते।
नामस्मृत्वा तथा भक्त्या सर्व्वदानफलंलभेत् ।९
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरं विप्रं यः श्राद्धे भोजयिष्यति।
आकल्प कोटि पितरस्तस्य तृप्ता न संशयः॥१०
ऊर्ध्वपुण्ड्रधरोयस्तु कुर्याच्छ्राद्धं शुभानने।
कल्पकोटि सहस्राणि वैकुण्ठेवासमाप्नुयात् ॥११
यज्ञदान तपश्चर्या जप होमादिकंचयत्।
ऊर्ध्वपुण्ड्र धरः कुर्यात् तस्य पुण्य मनन्तकम् ।१२

विशाल मनोहर ऊर्ध्व पुण्ड्र (तिलक) में लक्ष्मी सहित देवों के देव भगवान निवास करते हैं ॥ ६ ॥ इस कारण जिसके शरीर में ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण किया हुआ होता है उसके शरीर में भगवान का निर्मल मन्दिर है। ऐसा वेद कहते हैं ॥७॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाला ब्राह्मण सूर्य्यलोक में पूजित होता है । और विमान पर बैठकर परम पद को जाता है ॥ ८ ॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाले ब्राह्मण के दर्शन करने से पाप दूर हो जाते हैं। और

भक्ति पूर्वक नाम लेने से सर्वदान का फल मिलता है ॥ ९ ॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाले ब्राह्मण को जो श्राद्ध में भोजन करवाता है उसके पितृ देवता कल्प तक के लिये तृप्त हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥१०॥ हे शुभानने ! ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण कर जो ब्राह्मण श्राद्ध करता है। वह एक कोटि हजार कल्प तक वैकुण्ठवास करता है ॥११ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाला यज्ञ, दान, जप, तप, होमादिक जो कुछ करता है उसका उसे अनन्त फल मिलता हैं ॥१२॥

तत्रैव ब्रह्माण्डपुराणे । वही ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है

अशुचि र्वाप्यनाचारो मनसापापमाचरन् ।
शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राङ्कितोनरः ॥१३॥

(ब्रह्मपुराण)

अपवित्र अनाचारी व मन से पाप करने वाला भी ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने वाला सदैव पवित्र होता है ॥१३॥

तत्रैव भगवत वचनम । वहीं श्रीमुख वचन हैं ।

ऊर्ध्वपुण्ड्र धरोमर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित् ।
श्वपाकोपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥१४
ऊर्ध्वपुण्ड्र धरोमर्त्यो गृहे यस्यान्नमश्नुते ।

तदात्रिंशत्कुलं तस्य नरकादुद्धराम्यहम् ॥१५।

ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाला मनुष्य जहां कहीं भी मर जाय वह चाण्डाल क्यों न हो, विमान पर बैठकर मेरे लोकमें आकर पूजित होता है ॥१४॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाला मनुष्य जब जिसके घर भोजन करता है तब मैं उसके तीस कुलों को नर्क से उद्धार करता हूँ ॥१५॥

पद्मपुराणे । पद्मपुराण में कहा गया है ।

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य माहात्म्यं वक्ष्यामि शुभदर्शने ।
धारणादेव मुच्येत भवबन्धाद्विमूढ़धीः ॥ १६ ॥

श्रीभगवान कहते हैं कि हे शुभ दर्शने ! मैं ऊर्ध्व पुण्ड्र का माहात्म्य कहता हूँ । जिस ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करते ही अज्ञानीपुरुष संसार बंधन से मुक्त हो जाता है ॥१६॥

ब्रह्मरात्रे भगवद्वाक्ये । ब्रह्मरात्र में भगवान कहते हैं ।

यो न धारयते मर्त्यो मामकं चिह्नमीदृशम् ।
तं त्यजामि दुरात्मानं मदीयाज्ञातिलङ्घिनम् ॥१७
व्यालं दृष्ट्वा यथा लोके दर्दुराभयकम्पिताः ।
ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्कितं तद्वत् कम्पन्ते यमकिङ्कराः ।१८

ऊर्ध्वपुण्ड्रेण संयुक्तो म्रियते यस्तु मानवः।
चाण्डालोऽपि विशुद्धात्मा विष्णुलोके महीयते।१६

(ब्रह्मरात्र)

जो मनुष्य मेरे ऐसे चिह्नों को धारण नहीं करता है, उस दुरात्मा को मैं त्याग देता हूँ क्योंकि वह मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है ॥१७॥ जिस प्रकार संसार में सर्प को देखकर मेढ़क भय से कम्पायमान होता है उसी प्रकार ऊर्ध्वपुण्ड्र पुण्ड्रांकित मनुष्यको देख कर यमदूत कम्पित होने लगते हैं ॥१८॥ ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किये हुये जो मनुष्य मर जाता है व चाण्डाल होने पर भी पवित्र होकर विष्णु लोक जाता है ॥१६॥

तत्रैव मात्स्ये। मत्सपुराण में भी यही कहा गया है।

यो विनाचोर्ध्व पुण्ड्रेण यत्कुर्यात् कर्म्मवैदिकम्
निष्फलंतस्य तत् कर्म्म भस्मन्येवाहुतिर्यथा।२०

जो मनुष्य विना ऊर्ध्वपुण्ड्र किये जो कुछ वैदिक कर्म करता है। उसका सब शुभ कर्म भस्ममें आहुति डालने के समान निष्फल हो जाता है ॥२०॥

हारीते। हारीतस्मृति का कथन है।

ऊर्ध्वपुण्ड्र विहीनस्तु सन्ध्याकर्म्म समाचरेत्।

तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकं स च गच्छति ॥२१॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्रुतिबोधितम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्र विहीनस्य सर्वं तन्निष्फलं भवेत् ।२२

(हारीतिस्मृति)

विना ऊर्ध्वपुण्ड (तिलक) किये जो संध्याकर्म करता है उसका यह कर्म राक्षसी होता है । अतः शरीरान्तर वह मनुष्य नरक जाता है ॥२१॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र विहीन पुरुष के सब नित्य, नैमित्तिक व काम्य यह तीनो प्रकार के वेद विहित कर्म निष्फल हो जाते हैं ॥२२

विधानपारिजाते । पाराशर माधवीयेच ।

ऊर्ध्वपुण्ड्र विहीनस्य श्मशानसदृशंमुखम् ।
अवलोक्य मुखं तस्य ह्यादित्यमवलोकयेत् ।२३
स्नानंदानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
भस्मीभवति तत्सर्वं मूर्ध्वं पुण्ड्रं विनाकृतम् ।२४

ऊर्ध्वपुण्ड्र किये बिना मनुष्य का मुख श्मशान के समान है । ऐसों का मुख देखने पर सूर्य्य दर्शन से पवित्रता आती है ॥ २४ ॥ स्नान दान जप होम स्वाध्याय पितृतर्पण आदि समस्त शुभ कर्म्म में विना ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किये करने से सब भस्म हो जाते हैं ॥२४॥

रघुनन्दन भट्टाचार्य्य कृताह्निक तत्त्वेच ब्रह्मपुराण वचनम्। रघुनन्दन भट्टाचार्य्य कृत "अह्निकतत्त्व" में उद्धृत ब्रह्मपुराण का कथन है।

कर्मादौ तिलकं कुर्याद्रूपं तद्वैष्णवं परम्।
गोप्रदानं तपोहोमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।२५
भस्मीभवति तत्सर्वमूर्ध्वं पुण्ड्रं विनाकृतम्।

(ब्रह्मपुराण।

सर्वप्रथम कर्मके प्रारम्भमें तिलक लगाना चाहिये जो वैष्णव का परम रूप है। गोदान, तपस्या, होम, स्वाध्याय व तर्पणादि बिना तिलक लगाये (करने से भस्महो जाते हैं ॥२५-२६॥

अनूप विलासे ब्रह्मपुराणवचनम्। अनूप विलास में उद्धृत ब्रह्मपुराण के वचन हैं।

यागो दानं तपोहोमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
भस्मी भवति तत्सर्वं मूर्ध्वपुण्ड्रं बिना कृतम्॥

(ब्रह्मांडपुराण)

यज्ञ, दान, तप होम, स्वाध्याय व पितृतर्पणादि बिना तिलक धारण किये हुये करने से भस्म हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि निष्फल हो जाते हैं ॥२७॥

आचार दीपे विधान पारिजाते आह्निक तत्त्वे च ब्रह्मपुराण वचनम्। "आह्निकतत्त्व" नामक ग्रन्थ के आचारदीप के विधान पारिजात में उद्धृत ब्रह्मपुराण का कथन है।

ऊर्ध्व पुण्ड्रं द्विजः कुर्यात्क्षत्रियस्तु त्रिपुण्ड्रकम्।
अर्द्ध चंद्रं तु वैश्यस्तु वर्तुलंशूद्रजातिषु ।२८।
ऊर्ध्वपुण्ड्रन्तु सर्वेषां न निषिद्धं कदाचन।
धारयेयुः क्षत्रियाद्या विष्णुभक्ता भवन्तिये ॥
ऊर्ध्व पुण्ड्रं मृदाकुर्यात्त्रिपुण्ड्रम्भस्मनासदा।
तिलकं वै द्विजः कुर्याच्चन्दनेन यदृच्छया॥३०।

ब्राह्मण ऊर्ध्वपुण्ड्र व क्षत्रिय त्रिपुण्ड्र तिलक धारण करे। वैश्य अर्द्ध चन्द्र व शूद्र वर्त्तुलाकार (गोल) तिलक लगावे ॥२८॥ ऊर्ध्व पुण्ड्र सब जातियों को लगाने का निषेध नहीं है। क्षत्री आदि यदि विष्णुभक्त हों तो ऊर्ध्वपुण्ड्र धारणकरसकते हैं ॥२६॥ सदा मृत्तिका से ऊर्ध्व पुण्ड्र और भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये। ब्राह्मण चन्दनादि से इच्छानुसार तिलक लगा सकता है ॥३०॥

हरिभक्ति विलासे पाद्म वचनात् सामान्य तस्तिलक विधिः। हरिभक्तिविलास में पद्मपुराण के वचन है कि साधारणतया तिलक किस प्रकार धारण करना चाहिये।

वर्तुलंतिर्यगच्छिद्रं ह्रस्वं दीर्घंतरन्तनु।
वक्रं विरूपवद्धार्य्यंभन्नि मूलं पदच्युतम्[1] ॥३१॥
अशुभ्रं[2] रूक्षमासक्तं[3] तथा नांगुलि कल्पितम्।
विगन्धं[4] चापसव्यं[5] च पुण्ड्रमाहुरनर्थकम् ॥३२॥

तत्रैव। वहीं यह भी कहा है।

शान्तिदानामिकाप्रोक्ता मध्यमायुः करीभवेत्।
अंगुष्ठं पुष्टिदं प्रोक्तं तर्जनी मोक्षदायिनी॥३३

(पद्मपुराण)

अनूपविलासाह्निकतत्त्वविधानपारिजात
कल्पतरुधर्म्मसंग्रहोदाहृतास्मृतिश्च।

अनूप विलास आह्निकतत्त्व विधानपरिजात कल्पतरु धर्म संग्रह आदि ग्रन्थों में उद्धृत स्मृति वाक्य हैं।

१—पदच्युतम्—स्थानभ्रष्टं २—अशुभ्रं—मलिनं—३—आसक्तं अन्योन्य- संलग्नम्—४—विगंधं—दुर्गन्धिसहितम्—५—अपसव्यं वामहस्तकृतम्।

अंगुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुः करी भवेत्।
अनामिकाश्रियंदद्यान्मुक्तिन्दद्यात्प्रदेशिनी ॥३४

अगूठे से तिलक करने से शरीरको पुष्टि मिलती है। मध्यमा अंगुली से वृद्धि होती है। अनामिका श्रेय दाता है। और प्रदेशिनी अंगुली मोक्ष देने वाली है। ऐसा विधान किया गया है॥ ३४ ॥
(उक्त ग्रन्थों में)

हरिभक्ति विलासे आह्निक तत्त्वे च ब्रह्मण्ड पुराण वचनम्।
हरिभक्ति विलास में उद्धृत किये "आह्निकतत्त्व" के ब्रह्माण्ड पुराण का वचन है।

वीक्ष्यादर्शे जले वापि योविदध्यात्प्रयत्नतः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं महाभाग सयाति परमांगतिम् ॥३५

(ब्रह्माण्डपुराण)

जो मनुष्य दर्पण में व जल में देखकर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारणकरता है वह महाभाग परमगति प्राप्त करता है॥३५॥

कल्पतरौ आह्निक निवन्धे विधान पारिजातीय आह्निके हरिभक्ति विलासे रघुनन्दन भट्टाचार्यकृत आह्निक तत्त्वे च ब्रह्माण्ड बचनानि

कल्पतरु, आह्निक निबंध, विधानपरिजात, आह्निक हरिभक्ति विलास रघुनन्दनभट्टाचार्य कृत आह्निकतत्त्व आदि में ब्रह्माण्ड पुराण का कथन है।

पुण्ड्राणां धारणार्थाय गृह्णीयाच्छ्वेतमृत्तिका।
श्रीरङ्गे व्यङ्कटाद्रौ च श्रीकूर्मेयादवाचले ॥३६॥
प्रयागे नारसिंहाद्रौ वाराहे तुलसीवने ।
द्वारावत्यां शुभे रम्ये वासुदेव ह्रदे तथा ॥३७॥
सिन्धु तीरे च वल्मीके हरिक्षेत्रे विशेषतः।
विष्णुपादोदकं यत्र प्रवाहयति नित्यशः ॥३८
मृद एतास्तु संग्राह्या वर्जयेदन्यमृत्तिका।
गृहीत्वा मृत्तिकाम्भक्त्या विष्णुपादजलैस्सह।
धृत्वापुण्ड्राणि चाङ्गेषु विष्णुसायुज्यमाप्नुयात्
यत्तु दिव्यं हरिक्षेत्रं तस्यैव मृदमाहरेत् ॥४०॥

तिलक धारण करने के लिये श्वेत मिट्टी लेने योग्य है श्रीरङ्गनाथ वैंकटाचल कूर्माचल यादवाचल प्रयागराज नारसिंहाद्रि वाराह क्षेत्र तुलसीबन द्वारावती शुभरमणीक वासुदेव ह्रद समुद्र तट वल्मीक (बांबी) व विशेषकर हरिक्षेत्र जहां सदा विष्णु भगवान के चरण-

कमलों से उत्पन्न श्रीगंगा जी बहती हैं ऐसे उपरोक्त स्थानों की मृत्तिका तिलक लगाने केलिये ग्रहण करने योग्य कही गई है। दूसरी जगहों की मृत्तिका ग्रहण करना वर्जित किया गया है। भक्ति पूर्वक मृत्तिका लेकर भगवत चरणामृत से घिसकर अङ्गों में तिलक लगावे तो साधक विष्णु सायुज्यपद को प्राप्त होता है। अतः तिलकों केलिये दिव्य हरिक्षेत्रों की मिट्टी ग्रहण करना चाहिये ॥४०॥

कल्पतर्वन्तर्गताह्निक निवन्धे ब्रह्माण्डवचनम्।

कल्पतरु के अंतर्गत आह्निक निबंध में ब्रह्माण्ड पुराण का कथन है।

मृत्तिका चन्दनञ्चैव भस्मतोयं चतुर्थकम्।
एभिर्द्रव्यैर्यथा कालमूर्ध्वपुण्ड्रं भवेत्सदा ॥४१॥
स्नात्वा पुण्ड्रं मृदाकुर्याद्धुत्वाचैवतुभस्मना।
देवानभ्यर्च्य गन्धेन सर्व पापापनुत्तये ॥४२॥
जलेन तिलकं कुर्याज्जलान्ते कर्म सिद्धये।
भस्मना धूप शेषेण तिलक माधव सम्प्रदायानु-
यायिनां। देवानभ्यर्च्य गन्धेनेत्यस्यायं भावः।
भगवन्निर्माल्य चन्दनेन तिलकंविधेयं। नत्वन्येन

यत्तु नकदाचिन्मृदा तिर्य्यंगन्यसेदूर्ध्वं न भस्म-
नेति निषेधविधायकवचनम् । तद्धूप शेषतर
भस्मपरम् । अतएव मत्तिकाचन्दनेत्यादिना ।
भस्मनोर्ध्वपुण्ड्रस्य विधानं सार्थकम् ॥

मृत्तिका चन्दन भस्म एवं जल इन चारों वस्तुओं से सदैव कालानुसार ऊर्ध्वपुण्ड्र होता है ॥४१॥ स्नानांतर मृत्तिका व भस्म से त्रिपुण्ड धारण करे सब पापों के निवारणार्थ चन्दन से देव पूजा करे ॥४२॥ यदि कोई मनुष्य स्नान कर जल ही में जप करना चाहे तो कर्म सिद्धि के लिए जल ही से तिलक कर लेवे ॥ ४३ ॥ माधव सम्प्रदाय के अनुयायियों का यह मत है कि धूपशेष भस्म से तिलक लगाना उचितहै देवानभ्यचर्य गंधेन से ये अभिप्राय है कि भग-वत् निर्माल्य चन्दन से तिलक करलेनी चाहिए। और दूसरे से नहीं कभी भी मिट्टी व भस्म से तिर्यक ऊर्ध्वपुण्ड्र न लगाना चाहिये। क्योंकि इसके लिए निषेध किया गया है। ऊपर कहा गया धूप शेष भस्मधारण करना वह धूप शेषेतर भस्म परत्व है अतः भस्म से ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक सार्थक है।

अथ गोपीचन्दन माहात्म्यम्

हरिभक्ति विलासे पाद्म वचनम्। हरिभक्ति विलास में पद्म पुराण का कथन है।

ब्रह्मघ्नो वाथ गोघ्नोवा हैतुकः सर्वपापकृत्।
गोपी चन्दन सम्पर्कात्पूतो भवति तत्क्षणात्॥
गोपी चन्दन खण्डन्तु यो ददातिहि वैष्णवे।
कुलमेकोत्तरं तेन सन्तरेत्तारितं शतम्॥४५॥

(पद्म पुराण)

ब्रह्मघाती गौघाती हेतुवादी और सब पापों का करने वाला भी गोपीचन्दन के स्पर्श मात्र से उसी क्षण पवित्रहो जाता है ॥४४॥ गोपी चन्दन का एक भी टुकड़ा जो मनुष्य वैष्णव को दान करता है वह स्वयं तो मुक्ति प्राप्त करता ही है साथ ही अपने १०१ कुल को भव सागर से पार कर देता है ॥४५॥

तत्रैव स्कन्द पुराणे ध्रुवेणोक्तम्। वही स्कन्द पुराण में कही गई ध्रुवजी की उक्ति है।

गोपी मृत्तुलसीशंखः शालग्रामः सचक्रकः।
गृहेपियस्य पञ्चैते तस्य पाप भयं कुतः॥४६॥

(स्कन्दपुराण)

गोपी चन्दन तुलसी शंख सालग्राम और चक्र ये पांचों जिसके घर में है उसको पापों का क्या डर है ॥४६॥

तत्रैव काशी खण्डे च श्रीयमेन । वहां ही काशी खण्ड में श्री यमराज का कथन है ।

श्रीखण्डे क्वसआमोदः स्वर्णे वर्णः क्वतादृशः ।
तत्पावित्र्यं क्ववै तीर्थे श्रीगोपीचन्दने यथा ॥

(काशीखण्डे)

श्रीगोपी चन्दन में जो पवित्रता है वह सुगंधिता चन्दन में नहीं है। वह वर्ण स्वर्ण में नहीं है। और न वह पवित्रता कोई तीर्थ में है ॥४७॥

तत्रैव गरुड़पुराणे। गरुड़पुराण का कथन है ।

अथ गोपीचन्दनोर्ध्वपुण्ड्र माहात्म्यम्

योमृत्तिकां द्वारावती समुद्भवां करे समादाय ललाट पट्टके। करोतिनित्यं त्वथवोर्ध्वपुण्ड्रं क्रियाफलं कोटि गुणं सदा भवेत् ॥ ४८ ॥
क्रियाविहीनं यदि मन्त्रहीनं श्रद्धाविहीनं यदि काल वर्जितम् । कृत्वा ललाटे यदि गोपिचन्दनम् प्राप्नोति तत्कर्म फलं सदा क्षयम् ॥४९॥
गोपीचन्दन मितिहस्वत्वमार्षमिति केचित् ।

वस्तुतस्तुङ्याापोस्सञ्ज्ञाच्छन्दसोबंहुलमित्यनेन ह्रस्वोबोध्यः। यद्यपि क्रियादिहीनं कर्मस्यात्। तथापि गोपीचन्दनं करेकृत्वा तेनोर्ध्वपुण्ड्ंनिर्माय तत्फलंमक्षयं प्राप्नोतीत्यर्थः। गोपीचंदन सम्भवं सुरुचिरं पुण्ड्ं ललाटे द्विजो। नित्यं धारयते यदि द्विजपते रात्रौदिवासर्वदा ॥५०॥ यत्पुण्यं कुरुजाङ्गलेरविग्रहे माघेप्रयागे तथा। तत्प्राप्नोति खगेन्द्र विष्णु सदने संतिष्ठते देव वत् ॥५१॥ यस्मिन्गृहे तिष्ठति गोपिचन्दनं भक्त्या ललाटेमनुजोविभर्ति। तस्मिन्गृहेतिष्ठति सर्वदाहरिः श्रद्धान्वितः कंसनिहाविहङ्गम ॥५२ यो धारयेत् कृष्णपुरीसमुद्भवां सदा पवित्रां कलिकिल्वषापहाम। नित्यं ललाटे हरि मंत्र संयुतां यमस्र पश्येत् यदि पापसंवृतः ॥५३॥ यस्यान्तकाले खग गोपिचन्दनम् वाह्वोर्ललाटे हृदि मस्तके च। प्रयाति लोकं कमलालयंप्रभो

गोवालघाती यदि ब्रह्महा भवेत् ॥५४॥ ग्रहा न पीडयन्ति न रक्षसांगणा यक्षां पिशाचो रग भूत दानवाः । ललाटपट्टे खग गोपिचन्दनं सन्तिष्ठते यस्य हरेः प्रसादतः ।।५५॥

(गरुड़पुराण)

जो पुरुष द्वारावती की मिट्टी को लेकर मस्तक पर लगाता है अथवा उसका ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करता है उसके शुभ कर्म कोटिगुणा फल वाले होते हैं ॥४८॥ क्रियाहीन मंत्ररहित श्रद्धा विना व काल वर्जित भी गोपी चन्दन का ऊर्ध्वपुण्ड्र किया जाय तो भी सदैव अक्षय फल देने वाला होता है ॥४६॥ हे विप्र ! यदि ब्राह्मण सुन्दर गोपी चन्दन का सदैव ऊर्ध्वपुण्ड्र ललाटमें धारण करता है तो उसे वही फल प्राप्त होता है जो हे गरुड़ ! कुरु जांगल देश (कुरुक्षेत्र) में सूर्यग्रहण पड़ने पर व प्रयाग राज में माघ मास में स्नान करने पर फलप्राप्त होता है और वह देवताओं के समान विष्णु लोकमें निवास करता है ॥५०॥५१॥

हे गरुड़ ! जिस घर में मनुष्य बड़े अनुराग के साथ गोपी चन्दन का ऊर्ध्वपुण्ड्र मस्तक पर धारण करता है। उस घर में कंस को मारने वाले भगवान कृष्ण बड़ी श्रद्धा सहित सदैव वास करते हैं ॥५३॥ जो मनुष्य अपने ललाट में मन्त्र से कृष्णापुरी में उत्पन्न मृत्तिका को लेकर जो मृत्तिका सदैव पवित्र और कलियुग के पापों

को नष्ट करने वाली है सदैव धारण करता है उसको पापी होते हुए भी यमराज उसकी ओर देखभी नहीं सकते ॥५४॥ हे गरुड़ ! जिसके मरण काल में गोपी चन्दन मस्तक, भुजा ललाट तथा ब्रह्मघाती क्यों न हो परन्तु वह विष्णुलोक को जाता है॥ ५५ ॥ हे गरुड़ ! जिसके मस्तक पर गोपी चन्दन लगा हो उसके घर में ग्रह राक्षस यक्ष सर्प भूत पिशाच और दानवादि पीड़ा नहीं करते ॥५६॥

तत्रैव श्रीपद्मपुराणे गौतमेन । यही पद्मपुराण में कहे गये श्रीगौतम जी के वचन हैं ।

अम्बरीष महाघस्य क्षयार्थं कुरु वीक्षणम् ।
ललाटे यैः कृतं नित्यं गोपी चन्दन पुण्ड्रकम् ।

हे अमरीष ! महापाप के नष्ट करने के लिए उस पुरुष के दर्शन करो जो सदैव अपने मस्तक पर गोपी चन्दन का तिलक लगाता हो ॥५७॥

तत्रैव काशी खण्डे श्रीयमेन । यही काशी खण्ड में कहे हुए श्रीयम के वचन हैं ।

दूताः श्रृणुत यद्भालं गोपीचन्दनलाञ्छितम् ।
ज्वलदिन्धनवत्सोपि त्याज्यो दूरे प्रयत्नतः ॥५८

हे दूतो ! सुनो, जिसके ललाट में गोपी चन्दन का तिलक

लगरहा हो। उसे जलती हुई अग्निकी तरह बड़ी बुद्धिमानी के साथ दूर से ही त्याग दो, अथवा उनके समीप मत जाओ ॥५८॥

"आह्निक तत्त्वे" अनूप विलासे च शातातपः। आह्निकतत्त्व में व अनूप विलास में शातातप ने कहा है।

गोमती तीर सम्भूतां गोपी वापीसमुद्भवाम्।
मृदं मूर्ध्ना वहेद्यस्तु सर्वं पापैः प्रमुच्यते॥५६

श्रीमतीगोमती नदी के घाट की और गोपीवापी की मृत्तिका को जो अपने ललाट में धारण करता है वह सब पापों से निवृत हो जाता है॥५६॥

इति तुलसी मूल मृत्तिका माहात्म्यं हरिभक्ति विलासोदाहृतं पद्मपुराणे तथाहि। अथ तस्योपरि श्रीमत्तुलसी मूल मृत्स्नया॥

हरिभक्ति विलास में तुलसी मूल मृत्तिका को धारण करने का माहात्म्य पद्मपुराण से उद्धृत कियागया है। अनन्तर उस तुलसी मूल मृत्तिका का तिलक ऊर्ध्वपुण्ड्र वैष्णवों को धारण करनाचाहिये ऐसा कहा गया है॥

तत्रैव वैष्णवैः कार्यमूर्ध्वपुण्ड्म्मनोहरम्।
तं मृदं गृह्यैः पुण्ड्रं ललाटे धार्यते नरैः॥

गृह्य-गृहीत्वा

प्रयाणकं कृतं तैस्तु मोक्षाय गमनं प्रति ॥

वैष्णवों को तुलसी मूल मृत्तिका से मनोहर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाना चाहिये। जिन्होने उस मृत्तिका को लेकर अपने माथे पर सुन्दर पुण्ड्र लगाया है। उन्होंने मोक्ष के लिए यात्रा की है॥६०॥

तत्रैव कार्तिकमाहात्म्ये ब्रह्म नारद सम्वादे। वहीं कार्तिकमास स्नान के माहात्म्य में ब्रह्माजी व नारद जी के सम्बाद में कहागया है

तुलसी मृत्तिका पुण्ड्रं ललाटे यस्य दृश्यते।
देहं न स्पृशते पापं क्रियमाणन्तु नारद ॥६१

हे नारद ! जिसके माथे पर तुलसी मृत्तिका का तिलक दिखाई देता है। उसके शरीर को पाप छू तक नहीं सकते ॥६१॥

गरुड़ पुराणे। गरुड़ पुराण में कहा गया है।

तुलसी मृत्तिका पुण्ड्रं यः करोति दिने दिने।
तस्यावलोकनात्पापं याति वर्ष कृतं नृणामिति।
तस्योपरिष्टाद् भगवान्निर्माल्यमनुलेपनम्।
तथैव धार्य्यमेवंहि त्रिविध तिलकं स्मृतम् ॥६२

(गरुड़ पुराण)

जो मनुष्य प्रतिदिन तुलसी मृत्तिका का तिलक लगाता है उस पुरुष के दर्शन से एक वर्ष के किये हुए पापनष्ट हो जाते हैं ॥६३ इसके ऊपर भगवान से बचा हुआ (भगवत्‌निर्माल्य) चन्दनलगाना चाहिये। इस प्रकार तीन प्रकार के चन्दन कहे गये हैं ॥६३॥

अथ गङ्गा मृत्तिकायाः सिकतायाश्च धारण माहात्म्यं भारते दान धर्मे। महाभारत के दानधर्म पर्व में गङ्गा मृत्तिका व रेणुका धारण करने का माहात्म्य कहा गया है।

गङ्गातीर समुद्भूतां मृदं मूर्ध्ना विभर्ति यः।
विभर्त्ति रूपं सोर्कस्य तमोनाशाय केवलम् ॥

(महाभारत दानधर्म पर्व)

गंगा तीर की रेणुका व मृत्तिका जो मनुष्य मस्तक परधारण करता है वह अज्ञान नाश करने के लिए सूर्यरूप धारणकरता है ॥६४

काशी खण्डे प्येव मेव पठितम्। काशीखण्ड में ऐसा ही पढ़ा जाता है।

जाह्नवी पुलिनोत्थाभिः सिकताभिःसमुक्षितम्।
आत्मानं मन्यते लोको दिवीष्टमिवशोभितम्।

(काशीखण्डे)

पाद्मे च। पद्मपुराण में कहा गया।

यस्तु गंगामृदः पुण्ड्रन्नयेद्गात्रे द्विजोत्तमः।
सद्यस्तद्दर्शनादेव पापी पापैः प्रमुच्यते ॥६६॥
ललाटे दृश्यते यस्य गङ्गा सैकतमुत्तमम्।
स पुण्यवान्जगत्सर्वं पुनात्यत्र न संशयः।६७

(पद्मपुराण)

हे द्विजोत्तम ! जो गंगा की मिट्टी से अपने शरीर पर तिलक करता है। वह पुरुष अपने दर्शन मात्र से दूसरों को पाप से मुक्त करता है ॥६६॥ जिसके मस्तक पर गंगा की रेणुका लगी दिखलाई देती है वह पुण्यात्मा निसंदेह सर्व जगत को पवित्र करता है ॥६७॥

आह्निक तत्त्वे उशनाः। आह्निकतत्त्व में शुक्र जी कहते हैं।

अभावे तूदकेनापि पुण्ड्रो देवं तमर्चयेत्।

चन्दनादि के अभाव में जल से तिलक कर पूजन करे।

अनूप विलासे विष्णुः। अनूप विलास में विष्णु भगवानके वचन हैं।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजातीनामग्निहोत्रसमोविधिः।

श्राद्धकाले तु सम्प्राप्ते कर्ता भोक्ता च वर्ज्जयेत्
(अनूपविलास)

ब्राह्मणों को ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाना अग्निहोत्र यज्ञके समानफल दायी है ऐसा आर्ष ग्रन्थ कहते हैं। किन्तु श्राद्ध काल में श्राद्ध कर्त्ता और भोजन कर्त्ता ऊर्ध्वपुण्ड दोनों के लिये लगाना मना किया गया है ॥६८॥

नारायणः।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा चन्द्राकारमथापिवा।
श्राद्धकर्ता न कुर्वीत यावत्पिण्डान्न निर्वपेत्।

श्राद्ध काल में श्राद्ध कर्त्ता ऊर्ध्व पुण्ड्र त्रिपुण्ड्र व चन्द्राकार तिलक न लगावे। जब तक पिण्डदान न कर चुके ॥६९॥

विश्वादर्शे पराशरः। विश्वादर्श में पराशर का वचन है।

ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न च कुर्यात्त्रिपुण्ड्रकम्।
ऊर्ध्वं तु तिलकं कुर्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥७०

इतिवचनाच्छ्राद्धे तिलक विकल्प इत्येके पित्रेस्य तर्पणादौसावकाशत्वात्पूर्व वचन विरोधाच्चनेत्यपरेन।

देवार्हे न च श्राद्धे च नाभ्यङ्के न च शूद्रतः।
गोपीचन्दन लेपस्तु इत्येवं मनुरब्रवीत् ॥७१।

इति विश्वादर्शवचनात्तिलक निषेधो गोपी चन्दन तिलक विषय इत्यन्ये वयं तु स्मृति पुराण संहिता वाक्यानां गोपीचन्दनोपनिषद्वासुदे-वोपनिषदादि श्रुतिभि विंरोधाभावाय निषेधव-चनानि काम्यतिलक पराणीति अतएव ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद्दे वे पित्र्ये च कर्मणी इत्यादि वच-नानि संगच्छन्ते।

ऊर्ध्व तिलक लगावे त्रिपुण्ड्र न लगावे। देव पितृ कर्म में ऊर्ध्व तिलक करे। इस वाक्य से श्राद्ध में तिलक का वैकल्पिक है ? ऐसा कोई कहते हैं। पितृ कर्म में तथा तर्पणादि में सावकाशत्व होने से पूर्व विरोध होता है। दूसरे आचार्य ऐसा नहीं कहते हैं। देव पूजा में श्राद्ध में अभ्यंग में और सूद्र इत्यादि जाति से गोपी चन्दन लगाना चाहिये। ऐसा श्रीमनुजी कहते हैं। किन्तु ऐसा तिलक का निषेध विश्वादर्श में किया गया है। गोपी चन्दन के तिलक के विषय में यह है जो आचार्य्य कहते हैं। और हम तो स्मृति पुराण संहिता वाक्यों का गोपी चन्दनोपनिषद वासुदेवोप-

निषदादि श्रुतियों से जो विरोध है उसे दूर करने के लिये निषेध वचनों को (काम्य) तिलक समझते हैं। इसी से ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक दैव पितृ कार्यों में लगाना ठीक है। इत्यादि वचन संगत होते हैं।

तिलक करण मन्त्रमाह ब्रह्माण्ड पुराणे। ब्रह्माण्ड पुराण में तिलक करने का मन्त्र दिया गया है।

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।
वक्षःस्थले माधवंच गोविन्दं कण्ठ कूपके।७२।
विष्णुं च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरेतु वामनं वाम पार्श्वके।।७३।
श्रीधरं वाम बाहौतु हृषीकेशं तु कन्धरे।
पृष्ठे तु पद्मनाभं च त्रिके दामोदरं न्यसेत्।।७४
तत्प्रक्षालनतोयं तु वासुदेवेति मूर्धनि।
तत्तत्पुण्ड्राणि तन्मूर्तिं ध्यात्वा मन्त्रेणधारयेत्

मन्त्रस्तुः—

ॐ आद्या नमोन्ताश्च तुर्थ्यताः केशवादयो।
द्रष्टव्याः केशवादि मूर्तीनां ध्यानं यथा पाद्मे।।

मनुष्य तिलक लगाते समय यह उपरोक्त मन्त्र पढ़ता जावे और इस तरह ध्यान करता जावे। ललाट में केशव का उदर में

नारायण का वक्षःस्थल में माधव का कण्ठ में गोविन्द का दक्षिण कुक्ष में विष्णु का वाहुओं में मधुसूदन का ग्रीवा में त्रिविक्रम का वाम पार्श्व में वावन का वाम वाहु में श्रीधर का स्कन्धों में हृषी केश का पृष्ठ में पद्म नाभ का त्रिक स्थान में दामोदर का ध्यान करता हुआ तिलक व न्यास करे ॥७४॥ अनन्तर उस चन्दन प्रक्षा-लन जल को वासुदेव कहकर मस्तक पर मार्जन करे। और जिस देव का तिलक करे उसी देवता का ध्यान कर मन्त्र सहित तिलक धारण करे। मन्त्र ये है।

चतुश्चक्रं नमस्यामि केशवं कनकप्रभम्।
नारायणं घनश्यामं चतुःशङ्खं नमाम्यहम् ॥७६
माधवं मणिमङ्गाभं चिन्तयामि चतुर्भुजम्।
चन्द्र वर्णं चतुश्चापं गोविन्दमपि संश्रये ॥७७
विष्णुं चतुर्हलं वंदे पद्मकिञ्जल्कवर्चसम्।
चतुर्मुशलमब्जाभं संश्रये मधुसूदनम् ॥७८
आश्रयामि चतुः खड्गमग्निवर्णं त्रिविक्रमम्।
वांमनं वाल सूर्य्याभं चतुर्वज्रं विभावये ॥७९
श्रीधरं पुण्डरीकाभं चतुः पद्मं समाश्रये।
चतुर्मुद्गरकम् नौमि हृषीकेशं तडित्प्रभम् ॥८०

पञ्चायुधं पद्मनाभं प्रणमाम्यर्कवर्चसम् ।
दामोदरं चतुः पाशमिन्द्र गोपनिभं भजे ॥८१॥
वासुदेवमुपास्येऽहं पूर्णेन्दुद्युतिसन्निभम् ।

मैं चतुश्चक्र कनकप्रभ केशव को प्रणामकरता हूँ। चतुश्शंख घनश्याम नारायण को नमस्कार करता हूँ चतुर्गद मणिमङ्गा माधव का चिन्तन करता हूँ चतुश्चाप चन्द्र वर्ण गोविन्द का आश्रय लेता हूँ चतुर्हल कमल किंजलकाभ विष्णु को वन्दन करता हूँ। चतुर्मूशल कमल कान्ति मधुसूदन का आश्रय लेता हूँ, चतुर्वज्र वाल सूर्यकान्ति वामन का ध्यान करता हूं, चतुः पद्म श्वेत कमल कान्ति श्रीधर का आश्रय लेता हूँ चतुर्मुद्गर तरिन्प्रभ हृषीकेश को नमस्कार करता हूँ, पंचआयुध धारण कर्ता सूर्यकान्ति पद्मनाभ को प्रणाम करता हूँ चतुः पाश इन्द्र गोप सदृश कान्ति युक्त दामोदर को भजता हूँ व पूर्ण चन्द्र कान्ति वाले वासुदेव की उपासना करता हूं।

अथाङ्ग विशेषण तिलक परिमाणमाह ब्रह्माण्ड पुराणे)
अब अंग विशेष के अनुसार तिलक का जो पद्मपुराणमें कहागया है

ललाटे भुजयुग्मेतु पृष्ठयोः कण्ठकूपके ।
धारयेदूर्ध्वं पुण्ड्ं च चतुरङ्गुलमायतम् ॥८२॥
कुक्षौ तत्पार्श्वयोः प्रोक्तमायुतं तु दशाङ्गुलम् ।

वाह्वो वक्षः स्थले पुण्ड्मष्टाङ्गुलमुदाहृतम् ॥८३
एवं द्वादश पुण्ड्राणि ब्राह्मणः सततंधरेत्।
अन्तरालेषु सर्वेषु हरिद्रां धारयेच्छ्रियम् ॥८४

(ब्रह्माण्डपुराण)

मस्तक में दोनों भुजाओं में पीठ में कण्ठकूप में चार अंगुल का ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये।

हरिभक्ति भाष्करोदाहृतं हरिद्राचूर्णं धारण मंत्रमाह । हरि-भक्ति विलास में हल्दीचूर्ण धारण करने का मन्त्र कहा है।

क्रियायै नमः, शक्त्यै नमः, विभूत्यैनमः, सिद्धायै नमः, प्रीत्यै नमः, रत्यै नमः, धियैनमः महिम्न्यै नमः, महालक्ष्म्यैनमः इत्यादि विधान पारिजातोदाहृत वासुदेवोपनिषदि ललाटादि द्वादश स्थलेष्व नामिकांगुल्यां विष्णु गायत्र्या केशवादि द्वादश नामभिर्वाधारयेत्। ब्रह्मचारी वानप्रस्थो वा ललाट, कण्ठ, हृदय, वाहुद्वय मूलेषु वैष्णव्या गायत्र्योक्त कृष्णादि पञ्चनाम भिर्वाधारयेत्। यतिस्तर्जन्या शिरो ललाट हृद-

येषु प्रणवेन धारयेत्। ब्रह्मादयस्त्रयो मूर्तयस्तिस्त्रो व्याहृतयस्त्रीणि छन्दांसि त्रयो वेदा अकारोकारमकारा एते सर्वे प्रणवमयोर्ध्वपुण्ड्रत्रयात्मकास्तदेतदोमित्येकधा समभवत् परमहंसो ललाटे प्रणवेनैकमूर्ध्वं पुण्ड्रं वा धारयेत्।

क्रियायैनमः, शक्त्यैनमः, विभूत्यैनमः, सिद्धायैनमः, प्रीत्यैनमः, रत्यैनमः धियैनमः, महिम्न्यै नमः इत्यादि वासुदेवोपनिषद में विधान पारिजात में उद्धृत वचन हैं कि गृहस्थ मनुष्य ललाटादि बारह स्थानों में अनामिका अंगुली से विष्णु गायत्री अथवा केशवादि बारह मंत्रों से तिलक धारण करे। ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थ ललाट कण्ठ हृदय दोनों बाहुमूल में वैष्णवी गायत्री अथवा उक्त कृष्णादि नाम मन्त्रों से तिलक धारण करे। यति तर्जनी अंगुली से शिर ललाट हृदय में ॐ कार मंत्र से धारण करे। ब्रह्मादि तीनों मूर्तियां, तीनों व्याहृतियां तीनों छन्द तीनों वेद अकार उकार मकार यह प्रणव मय ऊर्ध्वपुण्ड्र त्र्यात्मक है। इसी से ओंकार उत्पन्न है। परमहंस ललाट में प्रणव मंत्र से एक ही ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे।

ब्रह्मरात्रे भगवद् वाक्यमपि। ब्रह्मरात्र में स्वयं भगवान के श्रीमुख वचन हैं।

प्रणवेनैव मंत्रेण मृदावैमामनुस्मरन्।

ललाटे धारयेन्नित्यं विष्णुसालोक्यमाप्नुयात ॥

(ब्रह्मरात्र)

प्रणव मंत्र से मृत्तिका का तिलक मुझे स्मरण करता हुआ धारण करने से मनुष्य विष्णु सालोक्य पद पाता है॥

स्कान्दे। स्कंद पुराण में कहा गया है।

चतुरङ्गुलमूर्ध्वाग्रं द्व्यंगुलं विस्तृतं मृदा।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजः कुर्यात्सान्तरालं मनोहरं ॥८६
द्व्यंगुलं त्र्यंगुलं वापि मध्ये छिद्रं प्रकल्पयेत्।
द्व्यंगुलं पार्श्वमेकं तु ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य लक्षणम्॥

(स्कंदपुराण)

चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा सुंदर मनको हरने वाला ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक जिसके मध्य में योग्य छिद्र या खाली स्थान रहे ऐसा तिलक ब्राह्मण धारण करे। दो अंगुल तीन अंगुल मध्य में रिक्त स्थान वाला व दो या एक अंगुल पार्श्व वाला भी ऊर्ध्वपुण्ड्र कहलाता है॥

भारद्वाज संहितायाम्। भारद्वाज संहितामें भी कहागया है।

आचम्य धारयेत् पुण्ड्रान्मृदा शुभ्रेण पूर्ववत्।
नासिका मूल मारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत्॥

(भारद्वाजसंहिता)

आचमन कर पूर्वोक्त स्वच्छ सफेद मिट्टी से नासाग्र से लेकर केशों तक ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करे ॥

नासिकामूल लक्षणंतु पाद्मे । नासिका की जड़ से तिलक धारण करने के लक्षण पद्मपुराण में भी कहे हैं।

आरभ्य नासिका मूलं ललाटान्तं लिखेन्मृदम् ।
नासिकायास्त्रयो भागानासामूलं प्रचक्षते ॥८६
समारभ्य भ्रुवोर्मूलमन्तरालं प्रकल्पयेत् ।
इति अन्तरालेषु सर्वेषु हरिद्रांधारयेच्छ्रियम् ॥

एतेन पूर्वोक्त वचनेन पीता अरुणाश्च श्री गृ-ह्यते, द्वयोरपि हरिद्रा विकारत्वात् ।

आचम्य धारयेत्पुण्ड्रान्मृदा शुभ्रेण पूर्ववत् ।
इत्यत्र पुण्ड्रानिति बहुवचनसामर्थ्यान्त्रयो-ऽपि पुण्ड्रा मृदैव कार्या इति लक्ष्यते तेन सि-तापि श्रीर्विहितैव किञ्च । ऊर्ध्व पुंड्रान् द्विजः कुर्य्यात्सान्तरालं मनोहर मित्युक्त्या मध्ये छिद्रं प्रकल्पयेदित्युक्त्या च मध्ये शून्यमपि विधेयम्

ईदृशं तिलकं श्रीमच्चतुर्भुजानुयायिनाम् ॥६२

नासिका मूल से लेकर ललाट तक मृत्तिका लगावे नासिका का तीसरा भाग नासामूल कहलाता है। दोनों भोहों के मूल को लेकर अंतराल कहलाता है। अंतराल में पीली श्री लगावे। इस पूर्वोक्त वचन से अरुण और पीली दोनों वर्णों की श्री ली गई है। क्योंकि दोनों हरिद्रा से वनती हैं। आचमन कर शुभ्र मृत्तिका का तिलक धारण करना चाहिये। ऐसा यहां पर "त्रिपुण्ड्रान्" इस वहु-वचन समर्थन से तीनों प्रकार का तिलक मृत्तिका से ही करना चाहिये। इससे श्वेत भी श्री युक्त है। ब्राह्मण सदैव ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। किंतु उस तिलक में अंतराल होना चाहिये। इस युक्ति से मध्यमें छिद्र भी रखना चाहिए। ऐसे कथन से मध्य में शून्यभी करना चाहिये ऐसा तिलक श्रीमान् चतुर्भुजानुयायिओं का है॥

श्रीहरिभक्ति विलासस्थ स्कान्दवचनम्। श्रीहरिभक्तिविलासमें स्कंद पुराण के वचन हैं॥

धारयेद्विष्णु निर्माल्यं धूपशेष विलेपनम्।
वैष्णवं कारयेत्पुंड्रङ्गोपी चन्दन सम्भवम् ॥६३

(स्कंदपुराण)

तत्रैव ब्रह्माण्डपुराण वचनानि। ब्रह्माण्ड पुराण में भी यही कहा गया है॥

दशांगुल प्रमाणन्तु उत्तमोत्तममुच्यते ।
नवांगुलं मध्मंस्यादष्टांगुल मतः परम् ॥६३

दशअंगुल तिलक प्रमाणिक है और सर्वोत्तम है । नवअंगुल प्रमाण वाला तिलक मध्यम है । और आठ अंगुल वाला भी मध्यम ही है ॥

'एतैरंगुलिभेदैस्तु कारयेन्ननखैः स्पृशेत् ॥ ६४

(ईदृशं तिलकन्तु श्रीमद्गौराङ्ग सम्प्रदाये प्रचरितम् । तदपि मध्यच्छिद्र सहितम् भवति, तथोक्तम् ॥ तत्रस्थ पद्मपुराणवचनम्) ।

एकान्तिनो महाभागा सर्वभूतहिते रताः ।
सान्तरालं प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रं हरिपदाकृतिम् ॥६५
निरन्तरालोर्ध्वं पुंड्रस्य निन्दा तत्रैव ।
निरन्तरालं यः कुर्य्यादूर्ध्वं पुण्ड्रं द्विजाधमः ।
सहितत्रस्थितं विष्णुं लक्ष्मीं चैव व्यपोहति ।६६
अच्छिद्र मूर्ध्वं पुण्ड्रन्तु ये कुर्वन्ति द्विजाधमाः ।
तेषां ललाटे सततं शुनः पादो न संशयः ॥६७

हरि मन्दिर लक्षणन्तु—

नासादि केश पर्य्यन्तमूर्ध्वंपुण्ड्रं सुशोभनम् ।
मध्यच्छिद्र समायुक्तं तद्विद्याद्धरि मंदिरम ।६८
वाम पार्श्वे स्थितो ब्रह्मा, दक्षिणोतु सदाशिवः ।
मध्ये विष्णुं विजानीयात्तस्मान्मध्ये न लेपयेत् ॥

हरिमंदिर (तिलक) का लक्षण-

नाशिका से लेकर सरके बालों तक सुशोभित ऊर्ध्वपुण्ड्र जिसके वीच में छिद्र (खाली जगह) हो वह भगवान का भवनही है जिसके वायें ओर श्री ब्रह्माजी व दायें श्रीशङ्कर जी एवं मध्यमें विष्णु भगवान हैं अतः तिलक के मध्य में किसी प्रकार भी लेपन नहीं करना चाहिये । और इसी कारण से इस स्थानको रिक्त ही रखना चाहिये ॥

✻ श्रीसीतारामजी ✻

✻ श्रीमतेभाष्कराय श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ✻

✻ श्रीगुरुचरणकमलेभ्योनमः ✻ श्रीमतेमरुन्नन्दायनमः ✻

अथ तिलकतत्त्वभाष्कर भाषाटीका

✻——✻

अगस्तउवाच—

कुर्बन्ति ये सखी भावं सम्प्राप्तये जानकीधवम् ।
वद चिह्नानि तेषांमे शृङ्गारेसंमतानिच ॥१॥

श्रीअगस्तजी बोले कि जो प्राणी श्रीसीतापति रामभद्रजी की समीप में जाने के लिये सखीभाव की उपासना करते हैं। हे भग-वन् अलंकार के योग्य उनके चिह्न मेरे से कहिये।

श्रीहनुमानुवाच—

सखीभावं दृढ़ं येषां तेषां चिह्नानिमे शृणु ।
अर्धचन्द्राकृतिमूले विन्दुरेखा च मस्तके ॥२॥

श्रीहनुमानजी ने उत्तर दिया कि जिनको सखी भाव की

उपासना दृढ़ है उन्हके चिह्न मेरे से सुनिये नासिका मूलमें अर्ध चन्द्राकार और उसके ऊपर मस्तक पर विन्दु रेखा होना चाहिये ॥

ऊर्ध्वरेखा हरिद्रायाश्चन्द्रिकाविन्दुरेव च ।
या देय्यंऽस्वमलाचन्द्रावल्लभाभाति पापहा ।३

उर्ध्व रेखा हरिद्रा की श्री की हो और उसीका विन्दु भी हो और प्रियतिस के ऊपर पीत किरणों की सी स्वच्छ चन्द्रिका शोभित होरही हो ॥३॥

कुङ्कुमांगयादिकाः सर्वाजानकीपरिचारिकाः ।
कुङ् कुमांगी प्रियारामा कुङ् कुमेन विभूषिता ।

कुङ्कुमाङ्गी इत्यादि सभी श्रीजनकनन्दनी जी की सेविका हैं कुंमकुंम से सव विभूषित हैं सब कुंमकुमाङ्गी है श्रीदशरथनन्दन जी की प्रिया हैं ॥४॥

हरिद्राचूर्णरेखावै विन्दुमूले च चन्द्रिका ।
मस्तके भाति जानक्याः सखीनां नित्यमेवहि ।

हरिद्रा चूर्ण की रेखा और विन्दु के मूल में चन्द्रिका श्री जानकी के मस्तक में और सखियों के ललाट में सोभित है ॥५॥

चन्द्रिका नासिकामूले भ्रूमध्ये वर विन्दुकम् ।

श्रीरेखाकेश पर्यन्तं श्रृंगारं कथितं मुने ॥६॥

नासिका के मूल भाग में अर्धचन्द्राकार चिह्न हो और दोनों भौंहों के मध्य विन्दु हो और श्रीरेखा केशके देश तक हो हे मुने यह रसमय श्रृङ्गार तिलक कहलाता है ॥६॥

सौभागिनीनां सर्वासां श्रृंगारमिदमुत्तमम् ।
ललाटे कुङकुमं नित्यं सिन्दूरं शिरसिध्रुवम् ॥७

सम्पूर्ण सौभागिनियों का यह सर्वोत्तम श्रृङ्गार है मस्तक (ललाट) पर कुंमकुंम (केशर व पीतरज) धारण करे और सिरपर (बीच ललाट के केस प्रदेशपर) सिन्दूर नित्य धारण करना चाहिये।

भूषितं मे तनुं पश्य सीतासौभाग्य भूषणैः ।
मदाश्रया भवेद्रामाकरोति स्ववसेतु माम् ॥८॥

श्रीजनकनन्दिनी के सौभाग्या भूषणों से विभूषित मेरे शरीर को देखो इन्हीं आभूषणों के प्रभाव से मेरे को अपने वस में करेगी और स्वयमेव मेरे हृदय में विराजमान रहैंगी ॥८॥

रसिकाये भविष्यन्ति रसायां राम भावुकाः ।
ते करिष्यन्ति सीतायाः श्रृंगारं परमोत्सुकाः ।

श्रीमान् रामभद्रजू के चरण कमलों का रसास्वादन करने वाले रसिक जो पृथ्वीमें होंगे वह वड़े उत्साह पूर्वक श्रीमती श्रीसीता जी का शृङ्गार करेंगे ।।९।।

षोडशेषु वरं विद्धि शृङ्गारं तिलकं मुने।
तिलकेषु च सर्वेषु शुभदं मन्यते इदम ।।१०

हे अगस्तजी षोडश शृंगारों में तिलक शृंगार (मय) प्रधान समझो और सम्पूर्ण तिलकों में शुभप्रदान करने वाला मेरा तिलक जिसको मैंने किया है वह श्रेष्ठ है ।।१०।।

गोलोके गोप्य लीलासु विचरिष्यन्तिते मुदा।
रसिकाये करिष्यन्ति शृङ्गारमिदमुत्तमम् ।।११

वे प्रसन्नता पूर्वक साकेत लोककी गुप्त लीलाओं में विचरैंगे जो रसिक इस उत्तम शृंगार को करैंगे ।।११।।

श्रीः शोभा श्रीकमला श्रीकीर्तिः श्रीश्चसम्प्रदा।
एतासु श्रींकला विद्धि श्रीसीतापूर्णनामिका ।।

श्रीशोभा श्रीलक्ष्मी और श्रीकीर्ति और सम्यक् प्रदान करने वाली श्रीसम्प्रदा इनमें श्रीजी कलारूप से रहती हैं और श्रीजनक-नन्दनीजी पूर्णा श्री हैं ।।१२।।

ममध्येयं श्रीगुरुः सा श्रीसीतारामवल्लभा।
मदाश्रयास्तु भक्ताये तां भजन्ति सुसिद्धये ॥१३

मेरा ध्येय श्रीगुरुबर हैं वह पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीरामभद्रकी प्रिया श्रीजगतजननी श्रीजानकीजी हैं और मेरा समाश्रयन किये जो भक्त हैं वह जानकीजी को ही साकेत प्राप्ति के लिये भक्ति करते हैं॥

येषां ललाटे तु श्रीमंगला शुभासविन्दुचन्द्रार्ध सुरेखकीर्तिः। मूले विभाति वरनासिकायास्ते वैव्रजिष्यन्ति श्रीरामधामा ॥१४॥

चन्द्रार्ध (अर्धचन्द्र रेखा) विन्दुसमेत सुन्दर मंगल शुभ की रेखा वाली रेखा जिनके ललाट में है सेन्दुर नासिका के मूल भाग पर जिनके विराजमान है वह साकेत लोक को जाते हैं ॥१४॥

श्रीविन्दु चन्द्रार्धपरंसुचिह्नं नित्यं ललाटे कुर्वन्ति रसिकाः। तेषां यशः स्वर्गपथेषु देवा गायन्ति स्वं भाग्यमलं सुमत्वा ॥१५॥

रसिकजन नित्य ही अपने भालमें श्रीविन्दु और चन्द्रार्ध का सुन्दर चिह्न करते हैं उन्हका यश स्वर्ग पर देवता लोग अपने भाग्य

को मन्द समझकर (कि जो पथ इनको प्राप्त है वो हमको अप्राप्त है ऐसा समझकर उनके महाआनन्द निर्मल कीर्ति के हिस्सेदार बनने के लिये उनके गुणों को) गाया करते हैं ॥१५॥

रकारस्य चन्द्रिकाभा मकारस्य च विन्दुकम् ।
अकारस्योर्द्धरेखा च श्रीवर्णोरामनामतः ।१६।

रकार स्वरूप चन्द्रिका है और मकार की शोभा विन्दु देता है और अकार की उर्ध्व रेखा और श्रीवर्ण श्रीरामनाम से सोभित होता है ॥१६॥

चन्द्रिकायां रामशक्तिः सीतायारुभयोर्मुने ।
सत्यं वसति नित्यं वै वाहकानां तु शंकरा ।१७

हे अगस्त्यजी चन्द्रिकामें राम और सीताजी की नित्य शक्ति विद्यमान है (वसतीहै) नित्यही सत्य कहता हूँ और जो धारण करते हैं उनको परम गति प्राप्त होती है ॥१७॥

रामायुधाभ्यां विप्राणामङ्कितौ भुजमूलकौ ।
येषांवैते महापुराया दैवैः सिद्धैश्च वन्दिताः ।१८

श्रीरामचन्द्रजी के आयुधों से जिन ब्राह्मणों के भुजा अङ्कित

हैं वे महापुण्य शाली हैं और देवता सिद्ध उनकी प्रशंसा करते हुये बंदना करते हैं ।।१८।।

शूद्रा वा श्वपचा वापि धनुषाङ्कितबाहवः ।
ब्राह्मणेषु च देवेषु पूज्याः श्रुतिसम्मताः ।।१९।।

धनुषवाण से अङ्कित वाहुवाले चाहै शूद्रहो अथवा चाण्डाल अथवा कसाई क्यों नहीं हो किंतु वह सम्पूर्ण ब्राह्मणों और देवताओं से पूज्य हैं यह श्रुति विहित सिद्धान्त है ।।१६।।

मुद्रामग्निषु तप्तां व शीतलां धनुर्षांकिताम् ।
धारयन्ति वाहु मूले ते नरा मनुजेश्वराः ।।२०

धनुष और वाण से अङ्कित मुद्रा चाहै शीतल हो या तप्त हो जो वाहु मूल में धारण करते हैं वे मनुष्य मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं।।२०।।

सीतायामुद्रिकां चापि वहन्ति भुजमण्डिताम् ।
मामकायेमयादत्तां कुर्वन्तिपरमात्मये ।।२१।।

श्रीसीताजी की मुद्रका कलाई के ऊपर भुजा के मध्यमें जो धारण करते हैं वह मेरी दी हुई मुद्रा को धारण करने वाले वह भगवान को प्राप्त करने वालों मे हैं ।।२१।।

युग्म मुद्राङ्कित तनुं पश्यन्वै गन्धचर्चितां।
सीतयासहरामोऽपि मोदतेभाव बल्लभाः ॥२२॥

श्रीसीताजी के समेत राम दोनों मुद्राओं से अङ्कित और चन्दनादि से व्याप्त शरीर को देखकर भावावेश में अति प्रसन्न होते हैं ॥२२॥

ममाज्ञया मामकाये कुर्वंत्येवं सदामुने।
ममेष्टं यान्तिते रामं विनायोगमखादिभिः ॥२३

हे मुनेश्वर ! मेरे प्रिय जो मेरी आज्ञा से हर समय इस प्रकार करते हैं वे विना योग यज्ञ आदि के ही मेरे प्रिय हो जाते हैं अथवा मेरे लोक को प्राप्त होते हैं ॥२३॥

ऊर्ध्वपुण्ड्राणि विन्द्वादि मुद्राः सन्तिह्यनेकशः।
धार्मिकैस्तु सदाग्राह्या मामकैर्हि मयोदिताः॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र और विन्दु मुद्रा अनेकों हैं धार्मिक लोक सदा धारण करे मेरे कहे हुये मेरी सम्प्रदाय के साधु धारण करें ॥२४॥

चक्रुश्चैतानि चिह्नानि प्रसादे जानकीपतेः।
ज्ञान्तर्यान्तिवहिर्नित्यं तिष्ठन्तीति वदाम्यहम्।

श्रीसीतारामजी की प्रसन्नार्थ यह चिह्न धारण करे उसका नाश नहीं होता और हर समय वह संसार सागर से परे रहते हैं, मैं निश्चय कहता हूँ ॥२५॥

रामोरमति वैनित्यं रहस्यः सहसीतया ।
तत्राधिकारिणां प्राप्ति र्नास्तिनानाधिकारिणाम्

श्रीरामचन्द्रजी श्रीसीताजी के सहित जहां रमण करते हैं वहां अधिकारीजन ही जासकते हैं अन्य अधिकारीजन नहीं जा सकते हैं

तस्माद्रामनिकेते ये गन्तुमिच्छन्ति भावुकाः ।
कुर्वन्त्येवमयोक्तं वै शृङ्गार शुभसम्प्रदाम् ॥२७

अतः जो साकेतलोक जाना चाहें वे भावुक मेरे कहे हुये शुभ प्रदान करने वाला मोक्ष देने वाला शृङ्गार करें ॥२७॥

वाञ्छितंतु सुखं तेवै प्राप्नुवन्ति न संशयः ।
येतैर्विभूषिता नित्यंमयोक्तैः सुविभूषणैः ॥२८

जो मेरे कहे हुए आभूणों (तिलकादि) से हर समय भूषित रहते हैं, वे अभिलषित सुखको पाते हैं इसमें संसय नहीं है ॥२८॥

जानकीवल्लभंयेवै जपन्ति ममवल्लभाः ।

अर्चयन्तिच्च ध्यायन्ति व्यभिचारेण वर्जिताः ॥

मेरे प्रिय जो भक्त है वह श्रीजानकी रमणजी को भजते हैं अथवा उनका जप करते हैं और उन्हीं की पूजा और उन्हीं का ध्यान करते हैं विशेषकर निष्कपट श्रीसीतापति जी का आराधना करते हैं (व्यभिचारी मत वर्जन करके किसी दूसरे का जप पूजा ध्यान न करे ॥२६॥

जानकी रामयोर्नित्यं भुक्तशेष मदन्तिवै ।
अन्योच्छिष्टं न दृष्ट्यापि पश्यन्ति सदुपासकाः ।

श्रीसीताराम जी का ही नित्य प्रति प्रसाद खाते हैं अन्य का उच्छिष्ट सच्चे राम भक्त (पाने की तो बात ही क्या है) आँख से भी नहीं देखते हैं ॥३०॥

प्रसादं पाद तीर्थं च स्वमन्त्रेणाभिमन्त्रितम् ।
ग्राह्यं नित्यमनन्यानां मन्त्रवाह्यं सुदूषणम् ॥

श्रीराम मन्त्र से अभिमन्त्रित प्रसाद और पादतीर्थ (चरणोदक) को भगवान के अनन्य भक्त ग्रहण करें मन्त्र से जो अभिमन्त्रित न हो वह दूषित माना जाता है ॥३१॥

यादृशी भावना येषां तादृशो वैक्रियामुने ।

क्रियते सौम्यदा भक्ति र्ह्यन्यथाप्रत्यवायदा।३२

हे मुने जैसी जिसकी भावना होती है वैसी ही उनकी क्रिया भी होती है सौम्य स्वभाव वाली भक्ति करना चाहिये अन्यथा विघ्न कारिणी भक्ति हो जासकती है ॥३२॥

यथाशौच शुभोकान्ता कान्तकृत्यैः प्रकीर्तिताः
जारेणमोदिता याच दूषिता सद्भिर्निन्दिता ॥३३
उपासकानां संगोप्यं मयोक्तं कृत्य भूषणम्।
ये शृणवन्ति कुर्वन्ति तेहि यान्ति परंपदम्।३४

मैंने भक्तों को गुप्त कृत्य और आभूषण बताये, इस विषयको जो सुनेगे और करेंगे वे साकेत लोक को प्राप्त होते हैं ॥३४॥

इति श्रीमद्हनुमत संहितायाम परमहंस्ये शृङ्गारप्रसंगे
हनुमद्गस्त्यसंबादे सप्तत्रिंशोऽध्यायः समाप्तः।

आपका—परमानन्द

* श्रीसीतारामजी *

॥ अथ वैष्णवतत्त्वभाष्कर भाषा ॥

———

सर्व स्वामी नित्यतृप्तः स्वतन्त्रः सर्वकारणम् ।
यश्च भक्त्या पराधीनस्तं रामं प्रणमाम्यहम् ॥
निषादाधिपतिं नत्वा सुग्रीवं च विभीषणम् ।
कुर्वे वैष्णवतत्त्वस्य भास्करं साधु तृप्तये ॥२॥

जो निखिल चराचर सृष्टि स्वामी हैं, नित्य तृप्त हैं, स्वतन्त्र हैं, सर्व विश्वके कारण हैं, और अपने भक्तों के वशमें हैं, ऐसे श्री रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥ निषादों के राजा गुहको, वानरेन्द्र श्रीसुग्रीव को और निशाचराधिप श्रीविभीषण को मैं नमस्कार कर साधुओं के संतोषार्थ श्रीवैष्णवसिद्धान्त का भास्कर निर्माण करताहूं

अथ भगवद्भक्तानां वशिष्ठत्वम् निरूप्यतेसौपर्णे

कलौ भागवतं नामयस्य पुम्सः प्रजायते ।
जननी पुत्रिणीतेन पितणांतु धुरन्धरः ॥३॥

कलौ भागवतं नाम दुर्लभं नैव लभ्यते ।
ब्रह्मरुद्रपदोत्कृष्टं गुरुणा कथितम्मम ॥४॥

(सुपर्ण पुराण में भगवद्भक्तों की श्रेष्ठता निरूपण की जाती है) कलियुग में जिस पुरुष का नाम भागवत होता है उसकी माता उस पुत्रके जन्मसे पुत्रवती कही जाती है और वह अपने पितरों का धुरन्धर है ॥३॥ मुझे गुरु मुखसे ज्ञात है कि कलियुग में भागवत नाम दुर्लभ है प्रत्येक को नहीं प्राप्त होता है और ब्रह्मरुद्र पदसे भी श्रेष्ठ है ॥४॥

समीपे तिष्ठते यस्य ह्यन्तकालेपि वैष्णवः ।
गच्छते परमं स्थानं यद्यपि ब्रह्महा भवेत् ॥५॥

मरणकाल में जिसके समीप वैष्णव रहता हैं वह मनुष्य ब्रह्महा (ब्रह्मघाती) क्यों न हो परमस्थान को जाता है ॥५॥

(तिष्ठते गच्छत इत्यार्ष स्कान्दे)
सकर्त्ता सर्वधर्माणां भक्तोयस्तवकेशव ॥६॥

(तिष्ठते गच्छते ये दोनों पद ऋषि प्रोक्त है)

(स्कन्द पुराण में कहा है) हे केशव जो आपका भक्त है। वह सर्वधर्मों को करने वाला है ॥६॥

सकर्त्ता सर्व्वपापानां यो न भक्तस्तवाच्युत ॥७॥

हे अच्युत जो आपका भक्त नहीं है वह सर्व पाप का करने वाला है ॥७॥

पापम्भवतिधर्मोऽपि तवाभक्तैः कृतंहरे ॥८॥

हे हरे आपके भक्तों का किया अधर्म धर्म होता है। और आप के अभक्तों का किया धर्म अधर्म होता है ॥८॥

निःशेष धर्म्मकर्त्ता वाप्य भक्तो नरके हरे॥
सदातिष्ठति भक्तस्ते ब्रह्महापि विशुध्यति ॥६

हे हरे मनुष्य सम्पूर्ण धर्मकर्ता भी हो यदि आपका भक्त न होवे तो नरक जाता है। ब्रह्महा भी (ब्रह्म हत्या करने वाला भी) मनुष्य आपका भक्त हो तो वह सदा शुद्ध है ॥६॥

निश्चलात्वयि भक्तिर्या सैव मुक्तिर्जनार्दन।
मुक्ताएवहि भक्तास्ते तवविष्णो यतोहर ॥१०॥

हे जनार्दन आपमें जो निश्चल भक्ति है वही मुक्ति है। हे विष्णो हे हरे आपके भक्त ही मुक्त हैं ॥१०॥

नूनं भागवता लोके लोकरक्षा विशारदाः ॥

व्रजन्ति विष्णुनादिष्टा हृदिस्थेनमहामुने ॥११

अवश्य संसार में आपके भक्तजन लोकरक्षा करने में विशारद हैं। हे महामुने विष्णु भक्त वैकुण्ठ लोक को जाते हैं ॥११॥

भगवानेव सर्वत्र भूतानां कृपया हरिः ॥
रक्षणाय चरंल्लोकान् भक्त रूपेण नारद ॥१२

हे नारद भक्तों के रक्षार्थ भक्तरूपी भगवान ही संसार में सर्वत्र विचरते हैं ॥१२॥

यस्तु विष्णुपरोनित्यं दृढ़ भक्तिर्जितेन्द्रियः ॥
स्वगृहेपि वसन् याति तद्विष्णोः परमम्पदम् ।१३

जो विष्णु में तत्पर है, दृढ़ भक्त और जितेन्द्रिय है, वह गृहस्थाश्रम में रहता हुआ भी विष्णु के परमपद को प्राप्त होता है ॥

अश्वमेध सहस्राणां सहस्रं यः करोति वै ।
नासौतत्फलमाप्नोति त्वद्भक्तैः पदमाप्यते ॥१४

मनुष्य सहस्रों अश्वमेध करने पर भी वह स्थान नहीं पाता है जो आपके भक्तों को मिलता है ॥१४॥

सर्वत्र वैष्णवाः पूज्याः स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।

देवतानां मनुष्याणां तथैवोरगरक्षसाम् ॥१५॥

स्वर्गमें संसारमें, पातालमें तथा सर्व लोको में वैष्णवों की देवता मनुष्य और सर्व राक्षस सब ही पूजा करते हैं ॥१५॥

येषांश्रवणमात्रेण पापं लक्षशतानि च।
दह्यन्ते नात्रसन्देहो वैष्णवानां महात्मनाम् ॥

जिन महात्मा वैष्णवों के नाम ही श्रवण मात्र से लाखों हजारों पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥१६॥

येषां पाद रजे नैव प्राप्यते जाह्नवी जलम्।
नार्म्मदं यामुनं चैव किम्पुनः पादयोर्जलम् ॥१७

जिनके चरणों की धूलि से ही गङ्गा स्नान का फल प्राप्त होता है फिर, उनके चरणामृत के समक्ष यमुना और नर्मदा का जल क्या है ॥१७॥

येषां वाक्य जलौघेन विना गङ्गा जलैरपि।
विनातीर्थसहस्त्रेण स्नातोभवतिमानवः ॥ १८

जिनके वचन श्रवणमात्र से विना गङ्गा जलके विना सहस्त्रों तीर्थावलोकन के ही मनुष्य पवित्र हो जाता है ॥१८॥

तावद्भ्रमन्ति संसारे पितरः पिण्ड तत्पराः।
यावत्कुले भक्तियुक्तः सुतो नैव प्रजायते ॥१९

पितृ देव पिण्डाकांक्षी होकर संसार में तब ही तक भटकते फिरते हैं जब तक कुलमें विष्णु भक्ति युक्त पुत्र जन्म नहीं लेता है॥

सएव ज्ञानवाँल्लोके योगिनां प्रथमोहिसः।
महाक्रतूनामाहर्त्ता हरिभक्तियुतोहियः ॥२०

वही मनुष्य संसार में ज्ञानी है वही योगियों में श्रेष्ठ हैं वही महायज्ञों का करने वाला है जो हरिभक्ति युक्त हैं ॥२०॥

काशीखण्डे ध्रुवचरिते·

नच्य वन्ते हियद्भक्ता महतीं प्रलयां यदि।
अतोऽच्युतोऽखिलेलोके स एव धर्म्मगोऽव्ययः॥

(काशीखण्ड मध्ये श्रीध्रुव चरित्र में कहा है) कि भगवद्भक्त महाप्रलय में भी च्युत नहीं होते हैं इसीसे ही सर्वलोक में वही अव्यय धर्म होते हैं ॥२१॥

नतस्माद्भगवद्भक्ताद्भेतव्यं केनचित्क्वचित्।
नियता विष्णुभक्तास्ते नतेस्युः परितापिनः ॥१२

तिस कारन से कभी भी किसी प्रकार हरिभक्तों से भेद न मानना चाहिये कारण यह है कि भगवद्भक्त पर दुखदायी नहीं होते हैं ॥२२॥

महाभारते राजधर्म्मे—

ईश्वरं सर्वभूतानां जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भक्ता नारायणं देवं दुर्गाण्यतितरन्तिते ॥२३

(महाभारत मध्ये राजधर्म्म में कहा है) भक्तजन ईश्वर सर्व संसार के पालन और नाश करने वाले भगवान नारायण का ही आश्रय लेकर दुःखों से पार होते हैं ॥२३॥

दुर्गाणि दुस्तर विविध दुःखानिविष्णुधर्मोत्तरे
शयनादुत्थितोयस्तु कीर्त्तयेन्मधुसूदनम् ।
कीर्त्तनात्तस्य पापानि नाशमायान्त्यशेषतः ॥२४

नारायण मित्यत्र पष्ठयर्थे द्वितीया नारायणस्यभक्ता इत्यर्थः ।

नारायणम् यह षष्ठी विभक्ति के अर्थ में द्वितीया है अर्थात नारायण के भक्त इति ॥

(दुर्गाणि का अर्थ कठिन अनेकों प्रकार के दुःख है विष्णु धर्म्मोत्तर में लिखा है) कि जो मनुष्य अपने शयन से उठकर भगवान का नाम लेता है, वह नाम कीर्तन मात्र से ही अशेष पापों को नष्ट कर देता है ॥२४॥

यस्याप्यनन्ते जगतामधीशे भक्तिः परायादव देवदेवे। तस्मात्परं ना परमस्तिकिंचित् पात्र न्त्रिलोके पुरुष प्रवीर ॥२५॥

हे पुरुषों में प्रवीर जिस प्राणी की अनन्त जगदीश्वर यादव देवदेव श्रीकृष्ण परमात्मा में भक्ति है उसे अधिक श्रेष्ठ और सत्पात्र त्रिलोक में दूसरा कोई नहीं है ॥२५॥

(द्वारकामाहात्म्ये प्रह्लादवलि सम्वादे)

(द्वारका माहात्म्य में प्रह्लाद वलिके सम्वाद में कहा है)

नित्यंये प्रातरुत्थाय वैष्णवानांतु कीर्त्तनम् ॥
कुर्वन्तिते भागवताः कृष्णतुल्याः कलौवले ॥२६

हे वलि कलियुग में नित्य प्रातः काल उठकर जो मनुष्य वैष्णवों के कीर्तन करते हैं वे भगवद् भक्त कृष्ण तुल्य हैं ॥२६॥

इति हाससमुच्चये ।
ये भजन्ति जगद्योनिं वासुदेवं सनातनम् ॥
न तेभ्यो विद्यते तीर्थ मधिकं राजसत्तम ॥२७॥

(इतिहास समुच्चय में कहे कि) हे राजसत्तम जो सर्वात्मक सनातन बासुदेव भगवान् का भजन करते हैं उनसे अधिकश्रेष्ठ कोई तीर्थ नहीं है ॥२७॥

यत्रभागवताः स्नानं कुर्वन्ति विमलाशयाः ॥
तत्तीर्थमधिकं विद्धि सर्वपापविशोधनम् ॥२८

जहां निर्मल मन वाले भगवान के भक्त स्नान करते हैं वह सब पापों का शुद्ध करने वाला श्रेष्ठ तीर्थ समझना चाहिये ॥ (सर्व तीर्थो से अधिक मानना चाहिये ॥२८॥

यत्ररागादि रहिता वासुदेव परायणा ॥
तत्र सन्निहितो विष्णुर्नृपते नात्रसंशय ॥२६

हे राजन् जहां पर रागादि से रहित वासुदेव में परायण भक्त रहते है ॥ वहां पर निकट ही में विष्णु भगवान स्वयं रहते हैं इसमें संसय नहीं है ॥२६॥

नगन्धै र्न तथा तोयैर्न पुष्पैश्च मनोहरैः ॥

सान्निध्यं कुरुते देवो यत्रसन्ति न वैष्णवः ।।३०

भगवान चन्दन जल मनोहर पुष्प इत्यादि से प्रसन्न हो समीपवर्ती नहीं होते हैं जितने कि वैष्णवों के रहने से प्रसन्न होते हैं

वलिभिश्चोपवासैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा ।
नित्यमाराध्यमानोपि तत्र विष्णुर्नतृप्यति ।।३१

जहां वैष्णव नहीं हैं वहां भगवान की पूजा वलिदान उपवास नृत्य गीत इत्यादि से पूजन करने पर भी विष्णु तृप्त नहीं होते ।।३१।

तस्मादेते महाभागा वैष्णवावीतकल्मषा ।।
पुनन्ति सकलांल्लोकास्तत्तीर्थमधिकं ततः ।।३२

इस कारण ये वड़भागी निर्दोष वैष्णवजन सब लोकों को पवित्र करतेहैं और उनका चरणोदक उनसे अधिक पवित्र करताहै ।।
(तत् यह शब्द अव्यय है तेन ऐसे अर्थ में प्रयोगिता है इससे वैसणव ही परम तीर्थ है इति)

येनृशंसा दुरात्मानः पापाचाररता सदा ।।
तेऽपियान्ति परंधाम नारायणपराश्रया ।।३३।।

जो सदा क्रूर स्वभाव हैं दुष्टात्मा हैं पापाचारी हैं वे भी भगवद्भक्त होने के कारण परमधाम को जाते हैं ।।३३।।

लिप्यन्तेन च पापेन वैष्णवाविष्णुतत्परा ॥
पुनन्तिसकलांल्लोकान् सहस्रांशुरिवोदितः ।३४

विष्णु में तत्पर रहने वाले वैष्णव पापसे लिप्त नहीं होते और जैसे सूर्य उदित होकर सर्व विश्व का अन्धकार नष्ट करते हैं ऐसे ही वैष्णव सर्वलोकों को पवित्र करते हैं ।।३४।।

जन्मान्तरसहस्त्रेषु यस्यस्याद्वुद्धिरीदृशी ॥
दासोऽहंवासुदेवस्य सर्वाल्लोकान् समुद्धरेत् ॥३५

हजारों जन्मों में जिसकी बुद्धि ऐसी होती है कि मैं वासुदेव भगवान् का दास हूँ वह सर्व लोकों को उद्धार करता है ।।३५।।

स याति विष्णुसालोक्यं पुरुषोनात्र संशय ।
किम्पुनस्तद्गत प्राणः पुरुषः संयतेन्द्रियाः ॥

और वह विष्णु लोक को जाता है इसमें सन्देह नहीं है और विष्णुगत प्राण तथा जितेन्द्रिय हैं फिर उनके लिये तो कहना क्या है ।।३६।।

श्रीभागवते प्रथम स्कन्धे-

येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वैगृहः ।

किम्पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥३७॥

(श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में) लिखा है कि जिनके स्मरणमात्र से तुरन्त मनुष्यों के गृह शुद्ध हो जाते हैं फिर उनके दर्शन स्पर्शन पाद प्रक्षालन आसनादिकों से क्या नहीं हो सकताहै ॥

द्वितीयेस्कन्धे-

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुष्कसा आभीर-
कङ्कायवनः खसादयः । अन्ये च पापा यदुपा-
श्रमश्रयाच्छुद्ध्यन्ति तस्मैप्रभविष्णवे नमः ॥३८

(दूसरे स्कन्ध में भी लिखा है) जिन भक्तों के आश्रम में रहने से किरात, हूँण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुस्कस, अभीर, कङ्क, यवन, खश, इत्यादि म्लेच्छ जातियां भी शुद्ध हो जाती है ऐसे विस्णु को नमस्कार है ॥३८

तृतीय स्कन्धे-

श्रुतस्यपुंसांरुचिरश्रयस्य नन्वञ्जसासुरिभि-
रीडितोऽर्थः । तत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्द पादार
विन्दं हृदयेषु येषाम् ॥३९॥

मनुष्यों को शास्त्र पठन का प्रयोजन यही समझा जाता है कि भगवत्कृत तत्तत् चरित्रों का श्रवण करना और उनके चरणार विन्द को हृदय में धारण करना ॥३६॥

नकस्यचिन्मत्पराः शान्तिरूपे नङ्क्ष्यन्ति-नो निमिषो लेढिहेतिः। येषामहं प्रियआत्मा सुतश्चसखागुरुः सुहृदोदैवमिष्टम् ॥४०

मेरे भक्त कभी काल का भय नहीं मानते न वे नष्ट होते हैं जिनका मैं प्यारा आत्मा पुत्र सखा गुरू सुहृद और इष्ट देव हूँ ॥४०

चतुर्थे स्कन्धे—

यानिर्वृतिस्तनुभृतां तवपादपद्म ध्यानाद्भव-ज्जनकथा श्रवणेन वा स्यात् ॥ सा ब्रह्मणि स्व-महिमन्यपि नाथमाभूत किंत्वन्तकासिलुलिता-त्पततं विमानात् ॥४१॥

(चतुर्थ स्कन्ध में लिखा है) हे गोविन्द आपके चरण कमलों के ध्यान से अथवा आपके भक्तों की कथाओं के श्रवण से जो आनन्द होता है वह ब्रह्मनिष्ठा परत्व से नहीं हो सकता है ॥

स्वधर्म्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान् विरञ्चिता-
मेतिततः परंहिमाम् ।। अव्याकृतं भागवतोथ
वैष्णव पदं यथाहं विवुधः कलात्यये ।।४२।।

अपने धर्म में निष्ठ रहने वाला पुरुष शत जन्ममें ब्रह्मत्व पाता है उसके पश्चात मुझको पाता है भागवत पुरुष विकार शून्य वैष्णव पदको पाता है ।।४२।।

पञ्चमेस्कन्धे-

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्ज्यया निर्वपणा
द्गृहाद्वा ।। न छन्दसा नैवजलाग्निसूर्यैः विना
महत्पादरजोभिषेकम् ।।४३।।

(पञ्चमस्कन्ध में लिखा है कि) हे रहूगण मनुष्य विना महात्माओं के चरणरेणु प्रसाद के तपस्या श्राद्ध यज्ञादि कर्म गृहस्था-श्रम धर्म वेदश्च गंगादि स्नान इत्यादि करने पर भी मुझे नहीं पा सकते हैं ।।४३।।

षष्ठेस्कन्धे-

रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः ।
तेषांयेके चनेहन्ते श्रेयो वैमनुजादयः ।।४४।।

(षष्ठमस्कन्ध में लिखा है कि) जो मनुष्यादि श्रेय कर्म नहीं करते हैं संसार में उनका जन्म धूलि समान है ।।४४।।

प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैवद्विजोत्तमाः ।।
मुमुक्षणां सहस्त्रेषु कश्चिन्मुच्येत्ससिध्यति ।४५

उनमें सत्द्विजोत्तमादि वर्ण प्रायः मुमुक्ष होते हैं । और मुमुक्षुओं में भी सहस्त्रों में कोई मुक्त होकर सिद्धि पाता है ।।४५।।

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।।
सुदुर्ल्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ।।

हे महामुने मुक्त सिद्धों में भी भगवद्भक्त होना कठिन है और कोटियों में भी शान्त चित्त होना दुर्ल्लभ है ।।४६।।

नारायणपरास्सर्वे न कुतश्चनविभ्यति ।।
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ।।४७

नारायण के भक्त जन कभी भी किसी से नहीं डरते हैं स्वर्ग अपवर्ग नरक उनकी दृष्टि में समान है ।।४७।।

सप्तमेस्कन्धे-

नैषांमतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापग-

मोयदर्थः । महीयसां पादरजोभिषेको निष्किञ्च नानांनवृणीतयावत् ॥४८॥

(सप्तम स्कन्धमें लिखा है कि) जब तक मनुष्यों की बुद्धि कृष्णपदार विन्द रेणुमें तत्पर नहीं होतीहै, तब तक निष्किञ्चन भगवद्भक्ति में प्रेम नहीं करते हैं ॥४८॥

विप्राद्द्विषड् गुणयुतादरविन्द नाभपादारविन्द विमुखाच्छ्वपचंवरिष्ठं । मन्ये तदर्पित मनोवचनेहितार्थंप्राणम्पुनाति सकलंनतुभूरिमानः ॥४९॥

द्वादशगुणयुक्त ब्राह्मण होकर भी यदि विष्णु भक्ति विमुख हो और चाण्डाल विष्णु भक्त हो तो उस ब्राह्मण से वह चाण्डाल उत्तम माना गया है क्योंकि उसने अपना मन कृष्ण में अर्पित कर दिया है और जिसके वचनहित कारक है जो सम्पूर्ण प्राणियों को पवित्र करता है। अतः वह श्रेष्ठ है और भगवद्भक्ति हीनको वहुत मान वड़ाई से क्या है ॥४९॥ (वहुत मान करने वाले जन अपने आत्मा को भी पवित्र नहीं कर सकते हैं ये भाव है)

अष्टमेस्कन्धे-

एकान्तिनो यस्य न किञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये

वैभगवत्प्रपन्नाः । अत्यद्भुतंयच्चरितं सुमङ्गलं
गायन्ति आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥५०॥

(अष्टमस्कन्धमें लिखा है) कि भगवान् के सच्चे भक्त कुछ भी वर नहीं चाहते । वे तो भगवद्गुणानुवाद रसरूपी समुद्र में मग्न रहते हैं ॥५०॥

नवमेस्कन्धे-

अहम्भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विज ॥
साधुभिर्ग्रस्तहृदयोभक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥५१॥

(नवमस्कन्ध में लिखा है) कि हे द्विज मैं भक्तोंके पराधीन हूँ स्वतन्त्र नहीं हूं सज्जन भक्त मुझे अपने वशमें किये हैं मुझे भक्त और भक्तों को मैं प्यारा हूँ ॥५१॥

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियंचात्यन्तिकींब्रह्मन् येषां गतिरहंपरा ॥५२

हे ब्रह्मन् मैं अपने भक्त साधुओं के विना स्वयं अपने को या लक्ष्मीको नहीं चाहता हूँ कि जिन भक्तों की परमगति मैं ही हूँ।

येदारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमम्परम् ।

हित्वामांशरणं याताः कथन्तान्त्यक्तुमुत्सहे ।।

जिन्होंने अपनी स्त्री गृह पुत्र हित प्राण धनधान्य इत्यादि त्यागकर मेरा शरण लिया है ऐसे उन भक्तों को मैं कैसे त्याग कर सकता हूँ ।।५३।।

मयिनिवद्धहृदयाः साधवः समदर्शिनः ।।
वशीकुर्वन्ति मांभक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिंयथा ।

जैसे पतिव्रता स्त्री अपने शीलादि सद्‌गुणों से पति को अपने वश में कर लेती है ऐसे ही मेरे समदर्शी सज्जन तथा सच्चे भक्त मुझे वश में कर लेते हैं ।।५४।।

साधवोहृदयं मह्यं साधूनां हृदयंत्वहम् ।
मदन्यंते न जानन्ति नाहन्तेभ्यो मनागपि ।५५

साधु मेरे हृदय हैं और मैं साधुओं का हृदय हूँ और वे मुझ से अन्य को नहीं जानते और मैं उनसे दूसरों को किञ्चित नहीं जानता ।।५५।।

दुष्करः कोनुसाधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम्
यैः सगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभोहरिः ।५६

जिसने सात्वत पति विष्णु भगवान को ग्रहण कर रक्खा है उन महात्मा साधुओं को दुस्त्यज कौन वस्तु है ॥५६॥

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान् भवतिनिर्म्मलः ।
तस्यतीर्थपदः किम्वा दासानामवशिष्यते ॥५७

जिनभगवान के नाम श्रवण मात्रसे मनुष्य निर्मल हो जाता है उन भगवद्भक्तों को प्राप्त होने में क्या अविशिष्ट (बाकी) है॥ अर्थात् कौन वस्तू उनको प्राप्त नहीं हो सकती है ॥५७॥

दशमेस्कन्धे-

तथा नते माधव तावकः क्वचिद्भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयिवद्धसौहृदाः ॥ त्वयाभिगुप्ता विचरन्तिनिर्भया विनायकानीकपमूर्द्धसु प्रभो ।५८

(दशमस्कन्ध में लिखा है) हे माधव तुम्हारे सच्चे प्रेमी भक्तजन सन्मार्ग से (अच्छे पथसे) कभी ही नहीं विचलित होते हैं॥ हे प्रभो आप जिनकी सुष्टतया (अच्छी प्रकार) रक्षाकर रहे हैं वे निर्भय होकर अनेकों विघ्नों के माथे पर लात धरते हुये विचरते हैं ॥५८॥

नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः ॥

ज्ञानिनाञ्चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥५९

इस संसार में भगवान् जितनी शीघ्रता से भक्तों को प्राप्त होते हैं उतने शीघ्रता से ज्ञानियों को नहीं प्राप्त होते हैं ॥५९॥

साधूनां समचित्तानाँ सुतरांम्मत्कृतात्मनाम् ।
दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ।

जैसे सूर्योदय होने से नेत्रों का अन्धकार रूपी बन्धन नहीं रहता वैसे ही मेरे सच्चे साधुओं के दर्शन से मनुष्यों को भवरूपी बन्धन नहीं रहता ॥६०॥

नह्यम्मयानि तीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः ।
तेपुनन्त्युरुकाले न दर्शनादेव साधवः ॥६१॥

जलरूप गङ्गादि तीर्थ मृत्तिका पाषाणादि विकृत देवता यह सब वहुत कालमें स्नान पूजनादि करने से मनुष्यको पवित्र करते हैं पर साधुजन तो दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देते हैं ॥६१॥

नाग्निर्नसूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं
खं श्वसनोऽथ वाङ् मनः ॥ उपासिता भेदकृतो
हरन्त्यघं विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्त्त सेवया ॥६२

भेद बुद्धि मनुष्य के न अग्नि न सूर्य्य न चन्द्रमा न नक्षत्र न मन पाप हरते हैं और भक्तजन विपश्चिजन एक मूहूर्त मात्र की सेवा ही में पाप नष्ट कर देते हैं ॥ ६२ ॥

यस्यात्मबुद्धिः कुणपेत्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥६३॥

जिसकी इस तुच्छ धातु विकार मय शरीर में आत्म बुद्धि है स्त्री पुत्रादि में स्वबुद्धि है पार्थिव द्रव्य में पूज्य बुद्धि है तीर्थ में जल बुद्धि है वह गौ खर वराबर है ॥६३॥

तवपरियेचरन्त्यखिल सत्वनिकेततया तत पदाक्रमन्त्य विगणय्य शिरोनिऋतेः ॥ परिवयसेपशूनिवगिरा विबुधानपि तांस्त्वयिकृत सौहृदाः खलुपुनन्ति नयेविमुखाः ॥६४॥

हे भगवान जो पुरुष सर्वाधार आपको समझकर आपके भक्त होते हैं वे मृत्यु के मस्तक पर पैर रखते हैं और जो आपको अपना सुहृद समझते हैं वे देवता पर अपनी आज्ञा स्थापित करते हैं जैसे पशुपाल अपनी वाणी से पशुओं पर आदेश करते हैं ॥६४॥

एकादशेस्कन्धे-

भूतानां देवंचरितंदुःखाय च सुखाय च ॥
सुखायैवहिसाधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ।६५

(एकादश स्कन्ध में लिखा है) हे देव संसारिक प्राणी जो कार्य करते हैं उससे उनको दुख ही होता है सुख नहीं होता है और आपके भक्तों का कार्य केवल सुख ही के लिये होता है ।।६५।।

भजन्ति ये यथा देवान्देवाअपितथैवतान् ।
छायेव कर्म्मसचिवाः साधवोदीनवत्सलाः ॥६६

वे भक्तजन जिस प्रकार देवताओं का सेवन करते हैं देवता भी उन्हें उसी प्रकार सेवन करते हैं ।। प्रतिछाया (प्रतिविम्ब) के सदृश और दीन वत्सल साधुजन होते हैं ।।

न म एकान्त भक्तानां गुणदोषोद्भवागुणाः ॥
साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषां ॥६७॥

जो मेरे सच्चे एकान्त भक्त हैं और समुचित्त बुद्धि के पर हैं ऐसे साधुओं को गुण और दोषज फल नहीं होते हैं ।।६७।। (गुण दोष से उत्पन्न भया गुण दोष फलीभूत नहीं होता है ।

यथोपश्रयमाणस्तु भगवन्तं विभावसुम् ॥
शीतं भयतमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥६८॥

जैसे अग्नि से सेवन करने वाले पुरुष का शीत भय तथा अंधकार दूरहो जाता है तैसे ही साधुओं को सेवन करने वाले पुरुष का भय भाग जाता है ॥६८॥

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परायणम्
सन्तोब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सुमज्जताम् ॥

वार बार संसार सागर में डूबते उतराते हुए (जलमें गुटका खाने वाले) पुरुष को परमौषधि साधु ब्रह्मज्ञानी जन हैं जैसे समुद्र में नौका है ॥६६॥

अन्नं हि प्राणिनांप्राण आर्तानांशरणंत्वहम् ।
धर्मोवित्तं नृणां प्रेत्यसंतोऽर्वाग्बिभ्यतोऽरणम् ।

जैसे अन्नप्राणियों का प्राण है वैसे ही और दुःखियों का आश्रय मैं ही हूं इसी प्रकार परलोक में धर्म ही एक धन है। और जन संसार भयसे डरे हुए मनुष्य के लिये मैं ही शरण हूँ ॥७०॥

सन्तोदिशन्ति चक्षूंषि वहिरर्कः समुत्थितः ॥

देवता वान्धवः सन्तः सन्त आत्माहमेवच ।७१

सन्त मनुष्यों को ज्ञानरूपी चक्षु:प्रदान करते हैं और वाह्य उदित सूर्य के समान प्रकाशवान है देवता वान्धव सन्त आत्मामें ही सन्त स्वरूप हूँ ।।७१।।

नकिञ्चित्साधवोधीरा भक्ताह्येकान्तिनोमम ।
वाञ्छन्त्यपि मयादत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ।।७२।।

मेरे दिये हुए जन्ममरण से रहित मोक्षादि पदको भी मेरे और शान्तधीर भक्त कुछ भी नहीं चाहते हैं ।।७२।।

द्वादशेच-

नह्यद्भुतमिदं मन्येमहतामच्युतात्मनाम् ।।
अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषुयदनुग्रहः ।।७३।।

श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्धमें लिखा है कि मैं इसेकुछ आश्चर्य नहीं समझता हूं कि जो महात्मा अच्युत प्रियजन संसार दुःख से दुखित अज्ञानी प्राणियों पर कृपा करते हैं ।।७३।।

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोऽपिवा ।।
शुद्धेरन्नंत्यजचापि किमुसम्भाषणादिभिः ।।७४

सन्तों के दर्शन स्पर्शन से ही महापातकी भी अत्यन्त शुद्ध हो जाते हैं फिर सन्तों से सम्भाषणादि करने से क्या नहीं हो सकता है

(नारदीये श्रीवामदेवरुक्माङ्गदसम्वादे)

श्वपचोऽपि महीपालविष्णोर्भक्तोद्विजाधिकः ॥
विष्णुभक्तिविहीनो योयतिश्चश्वपचाधिकः ।७५

नारद पुराणके वामदेव रुक्माङ्गद सम्बाद में कहा है कि हे राजन् श्वपच भी यदि विष्णु भक्त हो तो अभक्त ब्राह्मण से अच्छा है और विष्णु भक्ति बिहीन यतिश्वपच से भी गया गुजरा है ॥७५॥

स्कन्दे रेवाखण्डे श्रीब्रह्मोक्तौ —

इन्द्रोमहेश्वरोब्रह्मा परंब्रह्मतदेवहि ॥
श्वपचोऽपि भवत्येवयदातुष्टोऽसिकेशव ॥७६॥

स्कन्दपुराण में रेवाखण्डान्तर्गत श्रीब्रह्मवाक्य है, कि हे केशव जब आप एकश्वप च चाण्डाल के भक्त होने से तुष्ट हो जाते हो तब ही इन्द्र ब्रह्मा महादेव पर ब्रह्मये सब सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥७६॥

यदातुष्टोऽसितदेवश्वपचोऽपि इन्द्रादिर्भव
तितत्र परंब्रह्मे ति मुक्तस्तन्मयोवेत्यर्थः ॥७७॥

जब आप प्रसन्न होते हैं तवश्वपच भी इन्द्रादि तुल्यहो जाते हैं तत्र परंब्रह्म ऐसा कहा है इसका तन्मय ऐसा अर्थ है ॥७७॥

काशीखण्डे-

ब्राह्मणः क्षत्रियोवैश्यः शुद्रोवा यदिवेतरः ॥
विष्णुभक्तिसमायुक्तोज्ञेयः सर्वोत्तमोत्तमः ॥७८

काशीखण्ड में लिखा है-चाहे वो ब्राह्मण हो या क्षत्रिय हो या वैश्य हो या शुद्र हो या इतरजाति हो जिस समय वो विष्णु भक्त हो जाता है उसी समय वह सर्वोत्तम से उत्तम हो जाता है ॥७८॥

इतिहाससमुच्चये-

शूद्रंवा भगवद्भक्तं निषादंश्वपचंतथा ॥
वीक्षते जातिसामान्यात् स याति नरकंधुवम् ॥

इतिहाससमुच्चय में लिखा है कि जो पुरुष भगवानके भक्त शूद्र निषाद तथा चाण्डाल को भी जाति विचार परत्व से देखता है उसे पाप होता है (वह नरक को जाता है) ॥७९॥

तत्रैवभगवद्वाक्यम्-

शुनेप्रियश्चतुर्वेदीमद्भक्तः श्वपचः प्रियः ॥

तस्मैदेयंततो ग्राह्यं सर्वपूज्यो यथाह्यहम् ।८०

वहां ही भगवद्वाक्य है कि मुझे चारों वेदों का जानने वाला प्यारा नहीं है अपना भक्त मुझे चाण्डाल भी प्यारा है उसे दानदेना चाहिये और उसे ग्रहण करना चाहिये और वह मेरे समानपूज्यहैं ॥

द्वारकामाहात्म्ये प्रह्लादवलिसम्बादे-

संकीर्णयोनयः पूतायेभक्ता मधुसूदने ॥
म्लेच्छतुल्याः कुलीनास्ते येनभक्ताजनार्दने ॥८१

द्वारिकामाहात्म्य में प्रह्लादवलि सम्बाद में लिखा हैं कि यो भगवद्भक्त निकृष्ट योनियों में हैं वे भी पवित्र हैं किन्तु जो भक्त नहीं हैं वे कुली न होते हुए भी म्लेच्छ तुल्य हैं ॥८१॥

आदित्यपुराणे-

नामयुक्ताजनाः केचित् जात्यन्तरसमन्विताः ।
कुर्वन्तिमे यथाप्रीतिं न तथावेदपारगाः ॥८२॥

आदित्य पुराण में लिखा है कि मेरे नामोच्चारण करने वाली जातियां यदि वर्णशङ्कर भी हों तो मुझे प्रसन्न करती हैं किन्तु अभक्त वेदज्ञ मुझे प्रसन्न नहीं कर सकता ॥८२॥

पाद्मेमाघमाहात्म्ये—

श्वपाकमिवनेक्षेतलोकेविप्रमवैष्णवम् ॥
वैष्णवोवर्णवाह्योऽपि पुनातिभुवनत्रयम् ॥८

पद्मपुराणान्तर्गत माघमाहात्म्य में लिखा है कि संसार
भक्तिरहित विप्रकोश्वपच के समान जानना चाहिये और विष्णुभ
कुजाति भी है सोभी त्रिलोक्य को पावन करने वाला है ॥८३॥

नशूद्राभगवद्भक्ता ते सुभागवतामता ॥
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा येन भक्ताजनार्दने ॥८४

ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि भगवद्भक्त दर्शन स्प
आलाप सहवास और मित्रता से चाण्डालादि जातियों को प
कर देते हैं ॥८५॥

ब्रह्माण्डपुराणे

दर्शनस्पर्शनालापसहवासादिभिःक्षणात् ॥
भक्ताः पुनन्ति कृष्णस्य सख्यादपिच पुष्कस

विष्णुभक्ति युक्त शूद्र शूद्र नहीं है विष्णु भक्ति
सब वर्णों में शूद्र माने गये हैं ॥८४॥

इति श्रीसीताराम कृपापात्र सीतारामीय परमहंस परिव्राजक
शु. हरिहर प्रसाद विरचितो वैष्णवतत्त्व भास्कर: ॥१॥